परिचय-प्रकाश

आकाशवाणी एव दूरदर्शन गीतकार जनकवि इंजीनियर जयप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' का जन्म एक जनवरी 1947 को ग्राम पाण्डेयपुर जनपद बलिया (उ०प्र०) में हुआ । आपका लालन-पालन माता श्रीमती फूलवंशी देवी (स्व० 18-2-94) एव पिता श्री रामखेलावन शर्मा (स्व० 22-6-89) की देख रेख में हुआ। कविता में रुचि-विशेष होने के नाते आपने एम०ए० हिन्दी, साहित्य-रत्न की उपाधि प्राप्त की।

सम्मान एवं प्रशस्ति पत्र :

- नूतन साहित्यिक सघ लखनऊ द्वारा आयोजित काव्य-प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कृत सन् 1970
- भारत सरकार शिक्षा एव समाज कल्याण मंत्रालय, फैजाबाद द्वारा आयोजित काव्य-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कृत सन् 1975।
- साहित्यकार दिवस के शुभ अवसर पर अ० भा० अगीत परिषद लखनऊ द्वारा सन् 1978 में 'सुमित्रानन्दन पंत' एवं सन् 1997 मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पदक से सम्मानित।
- साकेतन फैजाबाद द्वारा आयोजित सारस्वत समारोह में पं० श्री नारायण चतुर्वेदी स्मृति सम्मान से सम्मानित (सन् 1993)

अन्य अनेकानेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित जैसे-पारस साहित्यिक संस्था बाराबंकी अन्धी-संस्थान, फैजाबाद, अवध-साहित्य सगम, फैजाबाद, कबीर-स्मृति मंच, प्रतापगढ़, तारिका विचार मंच इलाहाबाद आदि। विभिन्न कालेजों के कार्यक्रम में सम्मानित तथा विशेष रूप से सरपतीपुर इण्टर कालेज, इलाहाबाद द्वारा 'नारायण' कि उपाधि से सम्मानित

- राजीव गांधी के पचासवी वर्षगांठ पर फैजाबाद में आयोजित स्वतंत्रता-सग्राम सेनानियों के मध्य काव्य-पाठ पर विशेष 'सम्मान-पदक' प्राप्त सन् 1994।

प्रकाशित रचनाएँ – प्रेमाराधना, इमरजेंसी, गीतगाँव की बोली में, क्रान्तिरथी : शेरे बलिया चित्तू पाण्डेय, युग का प्रणाम इन्दिरा के नाम, ममता की छाँव, महारथी : दानवीर-कर्ण, छितरे-छन जीवन के, आंजनेय, तुम्हारी याद में।

अप्रकाशित कृतियाँ : युग-यात्री : लालबहादुर शास्त्री (महाकाव्य), बुद्धायन (महाकाव्य), स्थिति-शून्य विवेक की, सड़क का पत्थर अपाहिज बोलता है, बावन जोगी-बावन राग, भगदड़, ककहरा, गीताम्बरी, अफसरनामचा, छन्दों की छाया में, प्रकाश की गजलें, वीर-प्रवीर, टूटा पाँव प्रकाश का, चिन्तित भोलेनाथ, सत्यार्थी, बँटवारा. जीवन के चार दिन (लघु उपन्यास) रोटी की तलाश मे कहानी सग्रह इत्यादि

प्रस्तोता

प्रतिष्ठा में

माननीय श्री हरिमोहन मालवीय जी
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
के कर कमलों में
सादर सप्रेम भेंट!

प्रकाश
11/10/2000

रूप के रंग हजार

जनकवि

डॉ० जयप्रकाश शर्मा 'प्रकाश'

आलोक प्रकाशन

४ए/3के शिवकुटी इलाहाबाद

पत्राचार – जनकवि इं0 जयप्रकाश शर्मा ' प्रकाश'
8ए/3के, शिवकुटी, इलाहाबाद

• प्रथम संस्करण – 1999

• सहयोग – एक सौ पच्चीस रूपये मात्र

• मुद्रक : शाकुन्तल आफसेट
बलरामपुर, हाउस, इलाहाबाद

• प्रकाशक : आलोक, प्रकाशन
8ए/3के, शिवकुटी इलाहाबाद

ROOP KE RANG HAZAR
Poetry by – Jankavi Jai Prakash Sharma 'Prakash'

अनुक्रम

प्रिय पाठको !

आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि पूरा का पूरा खण्ड–काव्य 'रूप के रंग हजार' जनकवि 'प्रकाश' द्वारा हस्तलिखित पाण्डुलिपि की आफसेट प्रिंट है ।

विनयावनत:–

आलोक प्रकाशन

शिवकुटी

वाणी वन्दना

मा मौन वाणी को स्वर दे
बधनों से मुझे मुक्त कर दे !!

तार टूटे न बीना का कोई
गुनगुनाता चले हर बटोही !
फूल छन्दों का डोले पवन में
गंध गीतों का फैले गगन में !!

उर विमल स्निग्ध भावों से भर दे !
बंधनों से मुझे मुक्त कर दे !!

ज्ञान दे, ध्यान दे मां अनोखा
चेतना का खुले हर झरोखा
दे सकूं मैं किसी को सहारा
डूबती. नाव पाये किनारा!!

भक्ति दे शक्ति साधन से भर दे !
बंधनों से मुझे मुक्त कर दे !!

प्यार दे शारदे मां मनोहर
गीत गाऊँ तो नाचे सरोवर !
स्वर्ग के लोग झाँके धरा को
नींद आये नहीं अप्सरा को !!

स्वप्न को सत्य साकार कर दे !
बंधनों से मुझे मुक्त कर दे !!

हर सजे गीत उर-अर्चना से
हो न कुछ भी परे कल्पना के !
गीत 'परकाश' तेरा जो गाये
हर गली-गाँव-घर मुस्कराये !!

मेरे गीतों में गीता को भर दे !
बन्धनों से मुझे मुक्त कर दे !!

जनकवि ' प्रकाश

" स्रोत और आवाज "

काव्य प्रेमियो

यह मेरे लिए आपसे खुली बात करने का कालम है, जिसे लोग भूमिका के नाम से जानते हैं। भूमिका का सीधा जुड़ाव विषय-वस्तु से ही होता है और ऐसा नहीं है कि इस बात से मैं अवगत नहीं हूँ, लेकिन मुझे किसी चौखटे में अपने आपको बाँधना अच्छा नहीं लगता। स्वच्छन्द रूप में बिना किसी हिचक के, आपसे बातें करने में ही मुझे आनन्द मिलता है, बीच-बीच में जहाँ-तहाँ विषय वस्तु को भी छू लिया करता हूँ, कभी विषय-वस्तु में आपको प्रवेश कराने का लक्ष्य मन में नहीं रहता। इसके पीछे भी एक कारण है, जिसे आप स्वयं भी अनुभव करते होंगे। अब यों समझें कि जिस घर का दरवाजा ही खुला है, सबके लिए समान रूप से, उस दरवाजे की कुंजी भी आप लेकर क्या करेंगे ? मेरे कहने का कुल मिलाकर आशय यही है कि जब मेरी रचना दुरुह है ही नहीं, आम लोगों की बोल-चाल में रचना रू-ब-रू बात करती है तो उसके पीछे प्रस्तावना का लटका क्यों ?

मैं तो यदा-कदा छठीं-सातवीं कक्षा के बच्चो को अपने पास बैठा लेता हूँ और कहता हूँ — बेटा, ये रचना मेरी पढ़कर मुझे सुना तो ! जरा अपनी रचना का आनन्द मैं भी तो ले लूँ ! — पहले तो वह डर जाता है कि कहीं अंकल जी मेरी पढ़ाई-लिखाई की परीक्षा तो नहीं लेना चाहते ? इसलिए वह आनाकानी भी करता हुआ कहता — 'अंकल भला आपकी लिखी हुई रचना मैं कैसे समझ पाऊंगा, अभी तो मैं फलां कक्षा में हूँ और मेरी हिन्दी कोई अच्छी नहीं है। दिन-रात अँग्रेजी की स्पेलिंग रटने गणित के प्रश्न हल करने में ही माथा चकराने लगता है तो हिन्दी कब पढ़ूँ ? हिन्दी पढ़ने का समय ही नहीं मिल वैसे जी तो करता है। टीचर कहती हैं — अँग्रेजी रटो, गणित लगाओ, विज्ञान में डूबो तब तुम कहीं जीवन मे — सफलता पा सकोगे। हिन्दी

पड़ी अछूत की तरह धूल फाँकती रहती है। कुल मिलाकर यही समझिये कि हिन्दी मुझे कम आती है — हाँ जब आप कविता पढ़ते हैं तो कविता पूरी तरह समझ में आती है— लेकिन समझना और बात है, पढ़ना कुछ और - - - ' मैंने कहा — अच्छा बेटा! यह लो 'क्रान्ति-रथी' शेरे बलिया - चित्तू पाण्डेय — इसको पढ़ो तो! - - - आप आश्चर्य मानेंगे कि उसने बिना अटके, देखते-ही-देखते चार चौका लगा-दिया, यानी एक पृष्ठ में चार-चार पंक्तियों की छपी चौकड़ी आनन-फानन में पूरी भर ली — हाँ 'चौका' - क्रिकेट-की भाषा में आखिर बोल ही गया। ये क्रिकेट का बुखार केवल कुछ लोगों पर ही चढ़ा है, ऐसा नहीं है, मैं लाख बचाना भी चाहूँ तो अपने-आपको इस संक्रामक बिमारी से बचा नहीं सकता। कारण कि जब बिमारी घर में आ गयी और छितरा गयी तो मैं अपने को उस बिमारी से बचा लूँ, वह मेरे लिए असंभव भले न हो लेकिन ऐसा संभव कर पाने की संभावना भी कम ही है, वही ऊल-जलूल कारण बिना सिर-पैर का! अरे भाई! एक-दो बच्चे हों तो मना कर दूँ, डाँट दूँ या दौड़-लपक कर टी॰ वी॰ बन्द कर दूँ — क्रिकेट न-देखने दूँ, लेकिन यहाँ तो सब-के-सब बच्चे मेरे खिलाफ-बगावत कर देते हैं और मैं अकेला पड़ जाता हूँ, मेरी श्रीमती जी भी मेरा साथ नहीं देतीं और नहीं तो ऊपर से डाँट-पिला देंगी — 'जाइये चौराहे से सब्जी भी लेते आइए और ये अपना 'ददबोक' (दाढ़ी) कटा कर आइए —— शीशा में आप कभी अपना थोबड़ा तो देखते नहीं —— पता नहीं बाहर जो देखता होगा क्या कहता होगा?' अब आप ही बताइए — दाढ़ी मेरी और खुजलाये किसी और की! इसी बीच मेरा एक बच्चा दौड़ता हुआ आया - 'छकप पापा! सचिन ने गजब का छक्का लगाया है, आइये चलिए देखिये न! बड़ा मजा आ रहा है।' और ये छोटा वाला मेरा बच्चा - अंकित' मुझसे थोड़ा मुँह-लगा है भी — कलम छीन लेगा, चश्मा नोच लेगा - - - - क्या-क्या बताऊँ ये सब बच्चों की मीठी मीठी झिड़कियाँ हैं जो तन के रोम रोम की खिड़कियाँ

खोल देती हैं, मन आल्हादित हो उठता है — उल्टे उससे-गिड़गिड़ाता भी हूँ — फिर थोड़ा-सा गंभीर होकर शिक्षा भी देता हूँ — 'अच्छे लड़के अपने पापा को परेशान नहीं करते, देखो भाई! मुझे लिखने दो कविता, अभी-अभी एक 'भाव' ऊपर से आ गया है, उसे लिख लूँ तो मैं भी चलता हूँ क्रिकेट देखने।' इस मेरी बात को उसने लपक कर कैच कर ही तो लिया और मैं कैच हो गया यानी क्रिकेट की भाषा में — 'फिल्ड-आउट' और साहित्यिक भाषा में, अच्छा शब्द है — 'निरुत्तर'! बात, वैसे कोई बड़ी तो नहीं है लेकिन उसकी सामाजिक-राजनैतिक ज्ञान की दाद तो देनी ही पड़ेगी — और जानते हैं उसने क्या कहा? — उसने यह कहा — 'पापा, आपकी कविता का 'भाव' जब सुनो तो ऊपर से नीचे ही आता है, और कविता का भाव जब ऊपर से नीचे की ओर ही आता रहेगा — तो कविता का 'भाव' गिरना ही गिरना है, कविता की कद्र अभी क्या, कुछ दिन बाद इसका नाम-लेवा भी कोई नहीं रहेगा। ...

----- आप देखिये तो जरा — 'प्याज' का भाव — नीचे से ऊपर जाकर आसमान छू लिया — टमाटर-आलू की तो बात ही छोड़िए, यह 'नमक' लतिहर जो बोरों में भरकर अनर्गल समझ कर, दुकान के बाहर पड़ा रहता था, तहखाने के अन्दर चला गया और बिजली की तरह — उसका 'भाव' ऐसा चमका कि — 'प्याज' को भी नानी याद आ गयी — मुँह-ओठ सूख गये बेचारे के! वह 'नमक' तो 'भगवान' की तरह अन्तर्ध्यान ही हो चला! लोग टूट पड़े — पैंट सरक कर जमीन में आ गये — लंगोट पहन कर 'नमक' की तलाश में निकल पड़े — ब्लैकमेलियरों के चेहरों पर चमक आ गयी, तेल बहकर नाली में आ गया — शरम के मारे! बाप रे बाप! इस नमक ने तो हाय-तोबा मचा दिया — अब जले पर नमक छिड़कने भर को भी मयस्सर न होगा .....' मैंने सोचा यह पता नहीं अभी और किस-किस की खबर ले लेगा। यह संयोग ही समझिये कि आलू का नाम लेते समय वह बिहार के 'लालू' का नाम नहीं लिया। इसलिए मैंने उसके सामने पैदल होकर जानबूझकर आत्मसमर्पण

करते हुए कहा — 'अच्छा बाबा !' मैं चल रहा हूँ मैच देखने — यह कलम तो मुझे दो, और देखो बेटा ! आइंदा मेरा चश्मा झप-से मत झपटना नहीं तो चश्मा बड़ा ही नाजुक होता है, इसका शीशा फूट जायेगा।' तपाक से जवाब दिया — शीशा ही तो फूटेगा, आपकी आँख तो — नहीं फूटेगी ?' — देखा आपने ! कैसी तुकबन्दी भिड़ाकर मुझे मात दी ! — उसकी मम्मी कहती है —'यह भी अब बाप के देखा-देखी गुनगुनाने लगा है — कुछ पढ़ता-लिखता नहीं है। दूध देखते ही चकमा देकर छिप जाता है — अब कहाँ ढूढ़ूँ - हेरूँ ....।' अंतत! मैं बच्चों के साथ बैठकर टी· वी· के सामने, क्रिकेट देखने लगा और तत्काल बच्चों ने प्रस्ताव पास कर सर्वसम्मत 'घर-बन्द' आन्दोलन की — नोटिश वापस ले ली। प्रदेश-बन्द, देश-बन्द, रिक्सा-बन्द, टेम्पो बन्द, ट्रक बन्द, रेल बन्द, बस-बन्द --- कितना बन्द- गिनाऊँ ? अब 'घर-बन्द' भी कहीं हो गया तो जीना कठिन हो जायेगा, क्योंकि 'घर' समाज की अतिसंवेदनशील महत्व- पूर्ण इकाई है जैसे ग्राह्य वस्तुओं में 'नमक' का अपना अके- ला कोई जवाब नहीं। अच्छी-भली चटक-मटक मसालेदार सब्जी 'नमक' के बिना गले नहीं उतरेगी। इसीलिए तो — सोची समझी नीति के तहत 'नमक' पर ब्लैकमेलरों का ध्यान केन्द्रित हुआ ! और एक बात जो अच्छी हुई वह यह कि प्रशासन चौंक गया — डंडा भाँज दिया — 'नमक' बाहर तो आया ही साथ ही 'प्याज' को भी जमीन पर आना पड़ा। विपक्षियों का झंडा फहरने को तरस गया। .....

ओह ! मैं कहाँ बहक गया। लिखने बैठा भूमिका और लिख गया 'भूका'। 'भूका' शब्द 'भूमिका' के बीच से 'मि' का लोप होने से पैदा हुआ। और 'भूका' का एक अर्थ 'भुक्का' यानी 'कुछ नहीं' खोखला — शून्य, जिसका कोई महत्व नहीं होता, और मुझे यही अफशोश है कि मैं बहुधा भूमिका के नाम पर 'भुक्का' लिख जाता हूँ, पुस्तक से सम्बन्धित कम ही बात लिख पाता हूँ। मेरी किसी भी पुस्तक में लिखी भूमिका पढ़लें — आप 'भुक्का' ही पायेंगे। अब आपके मन में प्रश्न उठेगा ही कि — ऐसा क्यों ?

अभी फिलहाल इस प्रश्न को यो ही ज्यो का त्यो रहने दीजिए, थोड़ा धैर्य रखिये, इसका जवाब, इस प्रकार के दो-चार प्रश्न और जन्म ले-ले — तो इकट्ठे दे दूँगा – मैं आपको पूर्ण आश्वासन देता हूँ – मैं जानता हूँ आप इस प्रकार के आश्वासनों से चिढ़े हुए हैं क्योंकि बहुधा राजनेता आश्वासन देकर इस भोली-भाली जनता को बेवकूफ बनाते आ रहे हैं। लेकिन आप उस श्रेणी में कम से कम फिलहाल मुझे मत रखिये और सच मानिए कि तब इस प्रश्न के उत्तर की प्यास बुझ चुकी होगी। मै जब किन्हीं सवालों का जवाब नहीं ढूँढ पाता हूँ तो वही मेरा छोटा लड़का उन सवालों को आपस में कुछ इस तरह लड़ा-कटा देता है कि — बेचारे 'सवाल' कटी-पतंग की तरह मैदान छोड़कर बाहर चले जाते हैं --! अभी इस सवाल को यहीं-पड़ा रहने – या खड़ा रहने दीजिए – बेरोजगारी के प्रश्न की तरह, नहीं तो मैं खुद ही इस सवाल की लपेट में आ जाऊंगा --- सहमत हैं तो आगे बढ़ रहा हूँ।

रूप के रंग हजार :—

हाँ! तो इस पुस्तक का नाम मैंने रक्खा है —— 'रूप के रंग हजार' और इस तथाकथित भूमिका का शीर्षक 'स्मृति और आवाज'! मेरे ख्याल से दोनों के दोनों अपनी-अपनी जगह पर ठीक-दुरुस्त हैं। वैसे मैं इस किताब का शीर्षक 'एक रूप के रंग हजार' लिख देता तो कोई फर्क देखने-सुनने में नहीं पड़ता, लेकिन समझने में, अनुशीलन करने में काफी फर्क आ जाता। 'एक रूप के रंग हजार से ही बात प्रारंभ करना चाहूंगा। एक आदमी का-अगर दिन-रात मिलाकर पूरे चौबीस घंटे का अलग-2 चित्र लिया जाय तो सबका रूप अलग-अलग भाव-मुद्रा में रूपायित होगा, हाँ! वह चेहरा तो एक ही रहेगा — चित्र-देखने से स्पष्ट समझ में आयेगा कि सारे के सारे चित्र एक ही अमुक आदमी के हैं, लेकिन उस चेहरे के रूप के विभिन्न चित्रों में रंग अलग-अलग चढ़े होंगे – यहाँ रंग का अर्थ रंगीन या सादा चित्र से न लगाइयेगा नहीं तो बहुत बड़ा-भ्रम पैदा हो जायेगा। अब आप चित्रों को देखिये मैं यहीं आपको दिखा रहा हूँ — बस आपको अपनी 'स्मृति' को-सतर्क- संचालित करना होगा और आपकी स्मृति जैसे जैसे उन चित्रो को देखते हुए अपनी गति से आगे

बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे आपकी स्मृति में विभिन्न प्रकार की 'आवाजें' अंकित होती जायेंगी। इसी प्रकार व्यापक रूप इस चर-अचर संसार में आपकी स्मृति भूत-वर्तमान-भविष्य में बिचरण करेगी तो स्वतः स्फूर्त आवाजें आपकी स्मृति को झकझोरती चली जायेंगी। अब लीजिए स्वतः— भूमिका का शीर्षक 'स्मृति और आवाज' प्रकट हो गया, यानी मेरी बातों की लपेट में आ गया और मैं इसकी-चपेट में आने से बच गया।

हाँ! तो आप अभी कहाँ थे? अपनी स्मृति पर पर जोर डालिये। कहीं मेरी तरह आपकी स्मृति की चाल बेढंगी न हो जाय नहीं तो सपने में सोये-सोये— बर्राने-अकबकाने लगेंगे और आप बुरा न मानियेगा— अस्सी प्रतिशत संभावना बढ़ जायेगी कि कहीं आप कवि न हो जायँ— और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रथम-दृष्टि में लोग आपको 'पागल' की संज्ञा से न विभूषित कर दें! — कर भी देंगे तो बला से— एक कला तो आपके अन्दर जन्म लेगी— कल आप तुलसी, कबीर, सूर, पंत, निराला, रसखान आदि के सपने आसानी से देखने लगेंगे— मेरे कहने का कुल आशय यही है कि कल आप एक प्रतिष्ठित कवि हो सकते हैं— लेकिन उनकी तरह आप फक्कड़ जरूर हो जायेंगे यह तो अकाट्य सत्य है, अगर फक्कड़ न होंगे तो अमीरी डूब कर दीन-दुखियों की अनुभूति को कतई रूपायित नहीं कर सकते आपकी रचना में भावाभिव्यक्ति की शक्ल चुस्त-दुरुस्त नहीं दिखेगी यानी आपकी रचना अप-टू-दि-मार्क की रेखा को छू नहीं पायेगी। कवियों में आपकी स्थिति कुछ उन दीन-गरीबों की श्रेणी में होगी जो बेचारे गरीबी की रेखा के नीचे ही रहकर पूरी जिन्दगी काट देते हैं। समाज में कोई खास महत्त्व नहीं रहता। मान सम्मान तो प्राप्त होना बहुत बड़ी बात है, उन्हें कोई कविगोष्ठियों में भी आमंत्रित नहीं करता, कम से कम मैं इस क्षेत्र में अग्रसर होते बहुत सारे पापड़ बेल चुका हूँ इसलिए इस बात को यहाँ बुलन्दी से कहने में भी सक्षम हूँ। किसानों के सम्मेलन में साधारण किसान आमंत्रित नहीं हुआ करते, बल्कि वे पूंजीपति किस्म के जमींदार लोग ही आमन्त्रित होते हैं जिनकी अपनी हैसियत है, कुछ राजनीतिक पकड़ है।

तो मैं बात वहाँ पर कर रहा था जहाँ पर दीन-दुखियों की अनुभूति को कविताओं में रूपायित करने की चर्चा चली थी। जो-व्यक्ति कभी भूखा नहीं रहा वह रोटी की तड़प को नहीं सकता।

अमीरों की भट्ठी में आँच उतनी तेज नहीं होती कि उस पर आप अपनी रोटी सेंक सकें। वहीं दूसरी तरफ दीनों - दुखियों की आह-कराह की लपट इतनी तेज उठती है कि उसकी आँच में पर्वताकार आकार झुलस कर चपटा हो जाय - खाक में मिल जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। इसीलिए कोई भी राजनेता गरीबों का सेवक या रहनुमा बनकर ही राजनीतिक अखाड़े में उतरने का साहस - जुटा पाता है। वह गरीबों की आह - कराह की लपट में अपनी रोटी सेंकने की हिम्मत नहीं कर पाता - हाथ - पाँव झुलसने से लेकर पूरी तरह राजनीतिक धरातल से नेस्तनाबूत होने का खतरा रहता है। इसीलिए वे अपनी रोटी अमीरों की तिजोरी की मीठी आँच में ही सेंकते हैं और जब रोटी सेकेंगे तो उनको पूरा संरक्षण भी देंगे।

ये रोटी भी भगवान की तरह घट - घट में व्याप्त है। जिसको देखो वही रोटी सेंकने की बात करता है लेकिन सबका रूप - रंग - ढंग अलग - अलग हुआ करता है। रोटी रूप बिल्कुल - चाँद की तरह गोल - मटोल - सुन्दर और आकर्षक होता है। उसका अपना एक अलग तेवर होता है - राजा - रंक - फकीर सब इसके अधीन रहते हैं। इसका 'रूप' पूरे संसार में पेटेंट है, वरना वह - सर्व - व्यापक रोटी कैसी? यह भी अजीब बात है कि जब आप - आटे की लोई हथेली में मथकर चौकी पर रख देते हैं और उस - पर बेलन ढंग से चलाते हैं तो रोटी अपने - आप अपनी 'स्वाभाविक' गोलाई प्राप्त कर लेती है। यह 'स्वाभाविक' शब्द भी अपने - आप में कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी - सूर्य - तारे, सारे के सारे जितने पिण्ड हैं सब - के - सब गोले की तरह - अपनी आंतरिक खींचाव - शक्ति के कारण स्वाभाविक रूप से - गतिमान रहते हैं। अगर वे स्वाभाविक रूप से गतिमान न हों तो पथ से विचलित हो सकते हैं - यह बात अलग है कि वे कभी पथ - भ्रष्ट नहीं हुआ करते क्योंकि उनका संचालन कोई - आदमी नहीं किया करता। वे किस प्रकार चलायमान हैं यह एक वैज्ञानिक शोध का विषय है, यहाँ मैंने केवल इसे उदाहरण स्वरूप ही लिया है वह भी इसलिए यह समझाने के तौर पर - कि जिस चीज या व्यवस्था का संचालन व्यक्ति के हाथ में होता है उसमें तमाम किस्म की खामियाँ होती हैं और जाहिर है कि एक छोटी - सी भूल, वृहद घटना को जन्म देकर आतंकित कर देती है। आदमी का जीवन पूरा लाभ - हानि पर निर्भर है। वह हमेशा अपने को लाभ की स्थिति में देखना चाहता है, कोई यहाँ कुछ खोने के लिए पैदा नहीं हुआ है। सब लाभ पाने के लिए ही प्रति दिन घर से अपनी यात्रा का प्रारंभ करते हैं। कुछ तो घण्टो - भगवान से विनती - प्रार्थना करके ही निकलते हैं। शाम को वह

से अधिक लाभ घर खुशी खुशी लौटना चाहते हैं। कहीं कुछ खो गया हानि उठानी पड़ी दिन भर की

मगजमारी के बाद भी तो मेरे खयाल से आपको उससे कुछ खेरियत वगैरह पूछने की आवश्यकता तो नहीं ही पड़नी-चाहिए। उसके चेहरे का रूप-रंग स्वयं मौन बयान कर देगा। दुख-सुख, लाभ-हानि का विवरण सब पूरा-का-पूरा चेहरे पर रूपायित हो उठता है — 'रहीम' का एक दोहा याद आ गया है:

खैर-खून-खाँसी-खुशी बैर-प्रीति-मदपान!
रहिमन दाबे ना दबे जानत सकल जहान!!

रहीम की अनुभूति कितनी गहरी थी आप इस एक दोहे से उस कवि के व्यक्तित्व का आकलन कर सकते हैं कि वह अपनी कविता में, वह भी केवल दो पंक्ति में सनातन सत्य-कहने में सफल हुआ है। मैं कोई आपसे वाहवाही नहीं लेना चाहता कि मैं कोई नई चीज आपके सामने पैदा कर रहा हूँ। बहुत-कुछ लिख-पढ़ दिया क्या बल्कि लोगों के मन-मास्तिष्क में छपा-हुआ है — मंत्र की तरह। एक तुलसीदास ही सब पर भारी पड़ेंगे। बस अपनी-अपनी अनुभूति को सब अपनी-अपनी शैली में व्यक्त करते आ रहे हैं और आगे भी व्यक्त करते रहेंगे। बस यों समझ लीजिए कि जितने कवि उतनी शैली और उतनी तरही की रचना। 'रूप के रंग हजार' यहाँ तक पहुँचते पहुँचते अपनी प्रौढ़ावस्था में आ चुका है जो कुछ कमी है वह भी पूर्ण हो जायेगी — धैर्य रखना पड़ेगा आपको!

'भूमिका' एक स्थाई स्तम्भ हुआ करता है और इस स्तम्भ का अपना अलग मानदण्ड हुआ करता है। उसका उद्देश्य केवल यही होता होता है कि वह आपको उस पुस्तक में संग्रहित सामग्री से प्रारंभिक रूप से जोड़ दे। ठीक वैसे ही जैसे कोई आपका मित्र किसी अनजान व्यक्ति के सामने आपके व्यक्तित्व-विशेष का संक्षिप्त-आकलन प्रस्तुत करके उस व्यक्ति से आपको परिचित कराता है और आप भी उसके व्यक्तित्व से परिचित होकर घुल-मिलकर इस तरह बात करने लग जाते हैं कि कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि आप दोनों एक दम करीबी रहे हैं। तो भूमिका का अपना यह अस्तित्व हुआ करता है। लेकिन, मुझसे उस पारम्परिक लीक को पीटने में असुविधा होती है — ऐसी बात तो नहीं है फिर भी उस-परम्परा का निर्वाह क्यों नहीं कर पाता? इस प्रश्न का जवाब भी आप मुझसे चाहेंगे। धीरज रखिये, वक्त आने दीजिए नहीं तो लेख-नी रुक जायेगी — मैं लपेट में आ जाऊँगा। कवि हूँ, मुझे अभी चंचल बालक की तरह स्वच्छन्द विचरण करने दीजिए। अभी से भारी-भरकम बस्तों-किताबों-प्रश्नों के बोझ मेरी पीठ पर लादकर रीढ़ की हड्डी मत चटकाइये। एक बच्चे की तरह धर्म जाति के से कवि को दूर ही रहने दीजिए।

तुलसी, रत्ना के रूप पर लट्टू की तरह नाचते थे यानी कि उनके जीवन को नचाने की डोर रत्ना के हाथ में ही थी। तुलसी अपने जीवन को दाँव पर लगा बैठे थे। रत्ना भी उनसे कम प्यार नहीं करती थी, लेकिन वह देख रही थी कि उसका पति रूप के पीछे अकर्मण्य होता जा रहा है। यह मेरा 'रूप' एक ब्रह्म को निगल सकता है, एक महापुरुष को जन्म लेने से रोक सकता है। दूसरी तरफ बेरोजगार तुलसी मुझे भूखों मार डालेंगे, रोटी के लाले पड़ सकते हैं, इसलिए सच्चाई तो यह भी है कि उसे केवल तुलसी के भविष्य की ही चिन्ता नहीं सता रही थी - बल्कि उसको अपना भविष्य भी अंधकारमय दिखाई दे रहा था। आम जीवन से हटकर शायद तुलसी का पारिवारिक जीवन न रहा होगा, और आम जीवन में होता क्या है — कोई पत्नी नहीं चाहती कि मेरा पति दिनभर मेरा रूप निहारा करे — सब काम-धाम-छोड़कर! पहले वह प्रेम से समझाती-बुझाती है और जब वह समझाने में सफल नहीं हो पाती तो वह धमकियाँ भी देती है, जैसे कि — 'मैं मायके चली जाऊँगी — अगर आप नहीं सुधरे तो!' तुलसी सुधरे नहीं (यहाँ सुधरने का लौकिक अर्थ केवल इस भाव से है कि काम-काज रोटी की समस्या की तरफ इनका झुकाव न होना ही है), वह थोड़े समय के लिए मायके चली गयी होगी। तुलसी को रत्ना का रूप खींच रहा था — चुम्बक की तरह। तुलसी अपने-ऊपर काबू नहीं रख पाये और भादो की अर्द्धरात्रि में, जैसा कि सुनने में आता है कि वे लटकते हुए सर्प को रस्सी समझकर, उसके-सहारे रत्ना के शयनकक्ष में पहुँच जाते हैं। रत्ना का रूप क्रोध से अंगारे की तरह धधक उठता है — तुलसी उसके सामने जितने गिड़-गिड़ाते — हाथ जोड़ते हैं, उसके तिगुने-चौगुने रूप में वह इनके कृत्य से आक्रोशित हो उठती है और अन्ततः जो उसे अपने पति से न कहना चाहिए था वह सब-कुछ परम-पिता परमेश्वर की कसम दिलाती-हुई कहती है — 'जितनी प्रीति इस रत्ना की मिट्टी-देह से है, अगर इसकी आधी भी प्रीति कहीं भगवान से जुड़ती तो जीवन का कल्यान हो जाता।' बस क्या था — तुलसी का कामान्ध रूप उस क्रोध के अंगारे में जलकर भस्म हो जाता है — वहीं संत तुलसीदास का-जन्म होता है और तुलसी रामचरित के साथ घर-घर पहुँच-जाते हैं। एक 'रूप' जो कभी प्यार करता था वह 'रूप' अंगार उगलने लगा। ये सब क्या है? 'रूप के रंग हजार' कहने में कोई आपत्ति है क्या?

कुन्ती तब क्वांरी थी — जब कर्ण पैदा हुआ था। लोक-लाज, रीति-रिवाज के ऊपर वह असहाय बालक कर्ण अपनी माँ द्वारा ही परित्यक्त होता है। इस पर तो मैंने 'महारथी' खण्ड-काव्य भी लिखा है, प्रकाशित है और संभव है आप उससे अवगत भी होंगे। हाँ तो मैं यह कह रहा था कि कुन्ती की वह कौन सी विवशता थी जो उसे अपने दिल पर पत्थर

क्या इस समाज में कुन्ती अब नहीं है ? प्रति-दिन भ्रूण हत्यायें हो रही है – हजारों में वह क्या है ? इस अर्थ में तो कम-से कम कर्ण बहुत भाग्यशाली था जो उसकी ममतामयी मां ने सुरक्षित ढंग से मंजूषा-विशेष बनवाकर नदी में इस आशय से तैरा दिया था ताकि – उसे कोई आश्रय दे दे, पाल-पोष कर उसके व्यक्तित्व को निखार दे । और, उसकी भावना के अनुरूप वह – बालक अंततः 'राधा' की गोद में पलकर बड़ा हुआ । उसका सारा-का सारा रूप ही बदल गया । जहाँ वह राजकुमार होता – वहाँ वह सूत-पुत्र बनकर जीवनयापन करने पर मजबूर हुआ । अंततः वह संघर्ष करके वक्त को अपनी मुट्ठी में बाँधने में कामयाब हो जाता है – यहाँ वह कहानी दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं-जान पड़ती – इस पर अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं, लेकिन यहाँ यह दृष्टान्त देने का मेरा केवल एक ही आशय है कि – इस समाज में हजारों क्वांरी कन्यायें गर्भ धारण करके भी उस बच्चे को – जन्म लेने तक का मौका नहीं देती । आज का विकसित समाज इतनी ऊँचाई पर पहुँच गया है कि यह जघन्य अपराध धर्म का रूप लेता जा रहा है । कुछ तो आबादी रोकने के नाम पर और – कुछ उनकी लोक-लज्जा की सुरक्षा के नाम पर, लड़का या लड़की के नाम पर भ्रूण हत्यायें कर रही हैं । इस प्रकार का समाज कहीं उस समय रहा होता तो शायद – कर्ण का जन्म ही नहीं हुआ होता । जिन बच्चों की भ्रूण हत्यायें हो रही है, क्या उन्हें इस धरती पर जन्म लेने का अधिकार नहीं है ? जब आप-हम उस कुकृत्य को नहीं रोक सकते तो इस बालक को जन्म लेने से रोकने वाले हम-आप कौन होते है ? क्या हम-आप ही सांसारिक-सुख भोगने योग्य हैं ? क्या – हमीं इस संसार का नियन्ता बन बैठे हैं ? इस रूप के – कितने रंग हो सकते हैं इसकी परिकल्पना कोई कवि ही कर सकता है क्योंकि उपरोक्त सभी प्रश्नों का समाधान केवल भावनात्मक जुड़ाव से ही संभव है । मैंने तो यों ही काव्यात्मक शैली में लिख दिया 'रूप के रंग हजार' – वैसे लाखों-करोड़ों रंग भी हो सकता है । अब जाकर मुझे भी संतोष हुआ कि यह शीर्षक, काव्य की भावना के अनुरूप है । एक तरह से घुमते-घुमाते भूमिका के – स्वरूप को पूज ही लिया ।

खण्ड-काव्य के रूप में :–

'रूप के रंग हजार' को मैंने खण्ड-काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है । इसमें कुल सात सर्ग हैं । पहला सर्ग 'आयाम' है जिसमें रूप को अलौकिक वरदान के रूप में प्रस्तुत किया गया है । दूसरा सर्ग – 'साक्षात्कार' है जिसमें रूप का सा कला से होता है । कवि ने यहाँ अपने विशेष

अधिकार का प्रयोग करते हुए रूप और कला को एक साथ जोड़कर 'रूप-कला' नाम दिया है जो इस काव्य की नायिका है। कला के स्थान पर कला का संपूजक कवि अपने को उपस्थित करता है। वह 'रूप-कला' की पीड़ा का प्रत्यक्षदर्शी है। इस कल्पना में वास्तविकता का कहीं बोध हो, तो समझिये काव्य का सृजन सफल है - कवि अपने - लक्ष्य को प्राप्त कर पाने में सफल हुआ है। तीसरा सर्ग 'स्मृति' है। यह एक तरह से वियोग की स्थिति है। कवि को स्मृति में 'रूप-कला' की उपस्थिति का आभास होता है - उसकी आवाज स्पष्ट सुनायी देती है - इसी लिए मैंने तथाकथित भूमिका का शीर्षक भी 'स्मृति और आवाज' रक्खा है। कवि 'रूप-कला' में साहस भरते हुए उसे जीने की कला सिखलाता है और वह उसके दुख-दर्द को समाज के सामने प्रस्तुत करके समाज को चेतावनी देता है। चौथा सर्ग 'अतीत' है। इस खण्ड में 'रूप-कला' अपने अतीत का साक्षात्कार कवि से कराते हुए उसे व्यापक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करने का आग्रह करती है। यहाँ 'रूप' - स्वतंत्र है, सब जगह वही अपना रूप बदलकर समाज में विद्यमान रहता है। 'रूप के रंग हजार' के अनुरूप वह अपने 'रूप' को भिन्न परिस्थितियों में प्रकट करता है। उसकी व्यापकता का इसी से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि - कभी वह ब्रह्म का स्वरूप धारण करता है तो कभी संत योगी, फकीर, राजा का रोल करता है। 'रूप के रंग हजार' की सार्थकता को 'रूप' स्वयं सिद्ध करता है। पंचम सर्ग 'उद्बोधन' है। 'रूप' स्वयं जगह प्रति जगह प्रकट होकर विभिन्न मनोदशा में संबोधित करता हुआ दीखता है - और एक तरह से उपदेशक के रूप में समाज को सुधारने के लिए दृढ़-संकल्प होकर प्रवचन करता हुआ - दीखता है। षष्ठ-सर्ग 'परिरम्भन' है जो इस खण्ड-काव्य की रचना के उपरान्त जन्म लेता है। कारण कि 'रूप-कला' एक क्वारी कन्या के गर्भ से जन्म लेती है। वह अपूर्व सुन्दरी है लेकिन समाज में विभिन्न स्तर पर ठोकरें खाती हुई किसी तरह अपनी लज्जा को बचाये रखने में कामयाब रहती है यहाँ तक कि जब उसे कुछ लोग 'रूप-के बाजार' में बेचने के लिए ले जाते हैं तो वह उन्हीं का कटार झपट करके उन्हें घोंप देती है और वह इस अपराध मे जेल तक जाती है। संयोग से वह जिस जज के आगे

अपना अपराध स्वीकार करती है वह जज भी कवि-हृदय-का संवेदनशील प्राणी है — वह 'रूप-कला' को निर्दोष और समाज को दोषी करार देते हुए उसे मुक्त कर देता है। चूंकि 'रूप-कला' ब्याहता है लेकिन उसका पति शराबी-जुवाड़ी-अकर्मण्य और पुरुषत्वहीन है, इसलिए वह दर-दर की-ठोकर खाती हुई किसी संवेदनशील प्राणी का अवलम्बन प्राप्त करती है। क्योंकि सृष्टि का सृजन यहाँ इस परिस्थिति में बाधित होता है, फलत: 'परिरम्भन' सर्ग की रचना करके कवि ने एक आदर्श दाम्पत्य जीवन का चित्र उकेरा है। इसके बिना यह काव्य अपनी परिपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता था। 'रूप-कला' जिन कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई अपनी लज्जा को बचाने में कामयाब रहती है — यह उसका एक अलग आदर्श, समाज को निरन्तर प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। मैंने पहले ही इस खण्ड-काव्य में यह स्पष्ट कर दिया है ताकि — किसी के मन में नायक-नायिका का भ्रम न पले !

इस काव्य का नायक 'रूप' है या —
कि कला बन नायिका डोल रही है !
या कि रूप की भेंट कला से हुई
बन 'रूप-कला' पट खोल रही !!

सच हो कुछ भी इतना तो पता
रचना है रहस्य टटोल रही !
कवित्व तो 'प्रकाश' जमीन की है
रचती इतिहास भूगोल रही !!

इसके उपरान्त अंतत: सप्तम-सर्ग 'अवलम्बन' के रूप में आपके सामने प्रस्तुत किया गया है, जैसा कि सर्वविदित-सत्य है कि दाम्पत्य जीवन के बिना सृष्टि की संरचना का अग्रसारण संभव नहीं हो सकता। एक तरह से जहाँ शिशु का अवलम्बन-माँ है वहीं माँ अपने भविष्य का अवलम्बन शिशु में पाती है। वह शिशु के लालन-पालन में अपने ऊबड़-खाबड़ अतीत को विस्मृत कर वर्तमान की पूरी पूंजी समर्पित कर देती है। उसके इस समर्पण के पीछे कोई लालच या स्वार्थ नहीं हुआ करता।

मैं बहुधा अपने सहयोगियों-काव्य-प्रेमियों को-नमन करते हुए आग्रह किया करता हूँ कि इस काव्य को-पढ़ने के उपरान्त अपना अभिमत अवश्य भेजा करें — बड़ा-बल मिलता है आपके प्रोत्साहन से !

विनयावनत

दिनांक 4 नवम्बर 1993
(पुत्र अंकित के जन्मदिन पर)

'जनकवि'
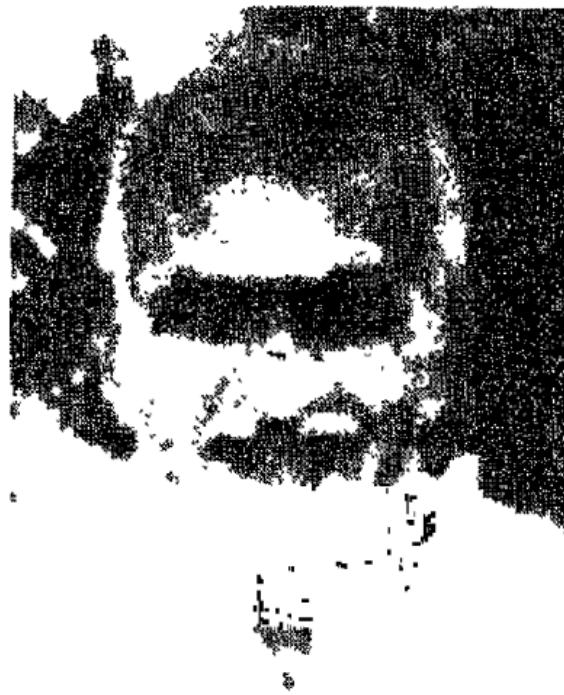
श्रद्धांजलि

कीर्तिशेष : गनपत राम पचेरीवाला

(24.04.1915 - 17.09.1986)

श्रद्धांजलि के शब्द

ग्राम पचेरी, जिला झुनझुनू, राजस्थान प्रदेश महा।
तपोभूमि त्यागी-बलिदानी वीरों की क्या कमी यहाँ!!

जन्म लिया जब बालक 'गनपत' ने तब गहन अंधेरा था।
स्वतंत्रता की छिड़ी लड़ाई, विश्व-युद्ध-घन घेरा था!!

हर संभव सहयोग समर्पित किया देश के हित में धन।
हम होंगे आजाद एक दिन मन में साध लिया था प्रन!!

आजादी मिल गयी, बंट गया देश-विकट तूफान चला।
घृणा-द्वेष-हिंसा का ताण्डव नृत्य देख दिल थाम लला!!

राम-लला की नगरी में आ, चरण राम का थाम लिया।
कृपा हुई प्रभु की व्यापारिक प्रतिभा का संधान किया!!

साधु-संत-कवि-लेखक सबका तन-मन-धन से मान किया।
सबका पाकर प्यार अचानक स्वर्ग-धाम प्रस्थान किया!!

'योग्य पिता का योग्य पुत्र' का रूप 'भगीरथ' ने पाया।
कीर्ति-पताका 'गनपत' जी का नभ-मण्डल में फहराया!!

कवि 'प्रकाश' की चली लेखनी, श्रद्धा के कुछ सुमन झरे।
ऐसे सहज मनस्वी की स्मृति में झुककर नमन करें!!

जनकवि

आलोक शिवकरा

जनकवि 'प्रकाश'

"आयाम"

इस काव्य का नायक 'रूप' है या -
कि 'कला' बन नायिका डोल रही !
या कि 'रूप' की भेंट 'कला' से हुई
बन 'रूप-कला' पट खोल रही !!

सच हो कुछ भी इतना तो पता
रचना है रहस्य टटोल रही !
कविता तो 'प्रकाश' जमीन की है
रचती इतिहास- भूगोल रही !!

रूप ही 'प्रकाश' के हैं प्राण का आधार प्रभु !
रूप ही में आपका आकार भी अनूप है !
रूप का मिला जो प्यार आपका मिला दुलार
रूप की ही बंदगी में जिन्दगी अनूप है !!

"आयाम"

प्रथम - सर्ग

1.

रूप बिना सब मूक प्रसंग है
अंग में कौन उमंग उकेरे ?
रंग महावर का न रुचे
जब लौं अनमोल न रूप संगेरे !!
कौन बसन्त की बात करे
जब रूप न संग में साँझ-सबेरे !
कौन 'प्रकाश' कहानी गढ़े
रचना बिन रूप के कौन रचे-रे ?!

2.

रूप तुम्हारी प्रभा में नहाई -
हुई चित-चाँदनी डोल रही है !
छन्द - कवित्त में रूप तुम्हारी -
ही भाउक भावना बोल रही है !!
रूप बिना सब व्यर्थ रसायन
भावना टाल-मटोल रही है !
कौन 'प्रकाश' के गीत सुने
रसना हर रूप टटोल रही है !!

3.

रूप निहारत नैन फिरे
बिन रूप के धूप न छाँव सुहाये !
जाये जहाँ जिस कानन में
उर-आनन में सुधि दाँव लगाये !!
सावन की बन दिव्य-घटा
मन में भट-भाँकत भाव जगाये !
ध्यान 'प्रकाश' का रूप में है
बिन रूप के प्यार न पाँव बढ़ाये !!

4.

वह कौन 'प्रकाश' दिशा कहिए
जिसकी गति रूप ये रोक न ले !
विधना बल है किसमें कितना
जिसका बल रूप ये सोख न ले !!
सपना जो कहे जग को, वह रूप-
के आगे पड़ें, यदि लोक न लें !
तब मानिये झूठ कहा कवि ने
यदि रूप घसीट लंगोट न ले !!

5.

इस रूप के रंग हजार यहाँ
इसका कोई एक प्रकार नहीं !
जग मान ले हार 'प्रकाश' भले
सकता ये कदाचित हार नहीं !!
गति रोक ले दामिनि संशय है
इसका अपना प्रतिकार नहीं !
तिहुँ लोक उजागर रूप सदा
इसका थकता मनुहार नहीं !!

—प्रकाश

6.

न संत बने कि पुजारी बने
ब्रह्मचारी बने, बनते रहिए !
त्र बाँध के मौन नकेल लगा
व्रतधारी बने, बनते रहिए !!
च है सब रूप 'प्रकाश' यहाँ
जग झूठ निरा, जपते रहिए !
वेन रूप के रौनकहीन कला
कवि हैं कविता रचते रहिए !!

7.

सब रूप ही रूप है रूप विना
कोई रंग जमा ले असंभव है !
विन रूप के योवन के पथ में
पग रुक बढ़ा ले असंभव है !!
करे कोटि उपाय 'प्रकाश' कोई
विन रूप के ध्यान असंभव है !
ठहरे किसके बल प्रान यहाँ
विन रूप के ज्ञान असंभव है !!

8.

हर रूप में रौनक है प्रभु का
तन में क्षमता प्रभु रूप से है !
जिससे जिस भाँति जुड़े-बिछुड़े
प्रभु की ममता हर रूप से है !!
रहता जो 'प्रकाश' प्रसन्न सदा
अनुबन्ध सही सत-रूप से है !
महिमा बस रूप की है अपनी
तुलना किस रूप की रूप से है !!

9.

तुम रूप सदाश्रय हो जग में
जयगान तुम्हारा सुनाता रहूँ !
उठते नित प्रात: ध्यान करूँ
बस प्यार ही प्यार लुटाता रहूँ !!
रसराज वसंत के स्वागत में
नित-नूतन गीत बनाता रहूँ !
बिन देखे 'प्रकाश' को चैन नहीं
निशि-बासर रूप सजाता रहूँ !!

10.

बिन रूप की प्रीति नहीं सधती
बिन प्रीति के ध्यान नहीं टिकता !
सब धर्म के लोग लड़ें तो लड़ें
किसी रूप में भेद नहीं दिखता !!
बड़-बोले नया इतिहास रचें
प्रभु रूप 'प्रकाश' नहीं मिटता !
कविताई दुहाई तो रूप की है
कवि झूठ को साँच नहीं लिखता !!

11.

तुम रूप 'प्रकाश' के प्रान में हो
भगवान की मूरति-सी मन में !
तुम जाति से धर्म से ऊपर हो
मेहमान सदृश्य रहो मन में !!
इस पार रहो, उस पार रहो
जिस पार रहो लहरो मन में !
तुम चाहे जहाँ विचरो वन में
विनती है यही ठहरो मन में !!

—प्रकाश

12.

स्कान जहान में रूप से है
उस रूप की शक्ति अपार प्रभो !
र राधा के रूप में मोहन की
छवि, बाँसुरी की ध्वनि-धार प्रभो !!
स्वर-शब्द के रूप में छन्द खिले
उर-भाव सुकोमल प्रीति प्रभो !
सद्भाव 'प्रकाश' का रूप लखे
कवि कौन बड़ा, अनुभूति प्रभो !!

13.

कभी पूरब को, कभी पश्चिम को
यह रूप दिशा बदला करता ।
कल था जो नहीं वह आज दिखा
तितली बन के मचला करता !!
किस रूप की प्रीति बयान करें
छन में यह रूप ढला करता !
जो ढले न 'प्रकाश' कभी जग में
उस रूप के नाम कला करता !

14.

किसका कब रूप कमाल करे
किस जीवन को गतिमान करे !
किस भावना से उत्प्रेरित हो
मन छूकर ज्योतिर्मान करे !!
बिगड़े तो विनाश रचे छन में
पिघले तो 'प्रकाश' महान करे !
इस रूप में हैं प्रभुता इतनी
वह सिंधु को बिन्दु समान करे !

— प्रका

15.

जिसने जिस भाव से रूप लखा
उस भाव से रूप ने मान किया !
जिसने छल-छद्म 'प्रकाश' रचा
उसको चुटकी पर तान दिया !!

उस रूप की दृष्टि में भेद नहीं
हर साधक को वरदान दिया !
जिस रूप से रोशन है जग ये
कवि ने उस रूप का गान किया !

16.

रूप के आंगन का विरवा -
तुलसी प्रभु भक्ति को साध सका
रतना के सुरूप में रूप खिला
निज भावना चंचल साध सका !!

जब रूप की धूप में सेंदा गया
तप के तन कंचन साध सका !
कविता है कोई खिलवार नहीं
यदि रूप 'प्रकाश' न साध सका

17.

सिय का प्रभु रूप रमायन था
मृग का भी सुरूप लुभावन था !
पति-उर्मिला का कछु दोष न था
उसका उर स्थिर पावन था !!

सब वक्त का खेल 'प्रकाश' सुनो
जहाँ लक्ष्मण-रेख रखावन था !
हरि की पुतरी सिय हार गयी
वहाँ साधु के रूप में रावन था !!

— प्रका..

18.

वह कौन-सी सीमा 'प्रकाश' कहो
जिसे रूप न लाँघ सके छन में !
वह कौन-सा युद्ध भयंकर है
जिसमें नहिं रूप खड़ा रन में !!

वह कौन-सी कामना है जिसमें
यह रूप न व्याप सके मन में !
वह कौन-सा पाहन है उर जो
जिसे बाँध न रूप ले दामन में !!

19.

उस रूप के रूप अनेक यहाँ
जिसको जस चाहत रूप मिले !
यह रूप है जीवन का सपना
कहीं छाँव मिले कहीं धूप खिले !!

इस रूप के सिंधु में अमृत है-
विष भी, बहु-रत्न अनूप मिले !
मथनी बन जीव 'प्रकाश' फिरे
जिसका जस कर्म स्वरूप खिले !!

20.

महिमा इस रूप की अद्भुत है
किस भाँति 'प्रकाश' बयान करे !
हँस दे तो सुवासित फूल झरे
कहिं आँख तरेरे तो प्रान हरे !!

यदि रूप को जीत सके बढ़के
तत् जीवन को गतिमान करे !
सब भाँति सदाशिव रूप वही
रच जीवन श्रेष्ठ महान करे !!

21.

वरदान कवित्त का रूप से है
कविता अनुभूति की वेदना है !
विश्वास करे न करे जग ये
हर रूप से मण्डित चेतना है !!

यह प्राण भी देकर-के अपने
इस रूप को जीवित देखना है !
बस रूप ही शेष 'प्रकाश' यहाँ
रहना है इसी को सहेजना है !!

22.

यह रूप है देन प्रभु की 'प्रकाश'
विनाश से बंधु बचाइयेगा !
प्रभु की है कला कर्त्तव्य यही
गरिमा इसकी न गिराइयेगा !!

अनबोलता बोल उठे छन में
मन में न विकार बिठाइयेगा
यदि रूप का मोल नहीं समझे
सिर पीट सदा पछताइयेगा

23.

कवि को जिस रूप ने मोहा कभी
लिख दोहा गया अभिवादन में
शत-कोटि प्रणाम किया प्रभु को
मनो फूल खिला उर आंगन में

घन-घोर घटा झक-झूम उठी
मन नाच मयूर उठा छन में !
रसराज बसंत ने टेक दिया -
सिर, देखते आनन-फानन में !!

—प्रका:

२५.

...से छू लिया रूप ने धन्य प्रभो!
यह जीवन-जन्म सँवार लिया!
...भु ने खुद संकट से उसको
सच मानो 'प्रकाश' उबार लिया!!

अभिमान जलाकर खाक किया
अपने अनुरूप निखार लिया!
मनो रूप ने नेह के आँचल में
प्रिय को निज मौन पुकार लिया!!

२६.

रूप से द्रोह किया, गृह त्याग
'प्रकाश' चला बन हार बटोही!
आ गया रूप बना तितली
विहँसा दृग खोल निहार बटोही!!

कोकिल कूक गयी मधुरा
मन गोकुल गाँव में टार बटोही!
मूँद के नैन बेचैन हो रूप को
बाँध लिया अँकवार बटोही!!

२७.

भार बना तन रूप बिना यह
रूप तुम्हें अब खो न सकेंगे!
काशी कमण्डल फेंक 'प्रकाश'
बिना हम रूप के सो न सकेंगे!!

प्राण दिया प्रभु ने जिस रूप में
त्याग उसे तन ढो न सकेंगे!
साथ नहीं हँस-बोल सके यदि
कष्ट में आँख से रो न सकेंगे!!

 — प्रकाश

27.

हम तो उस रूप के कायल हैं
जिस रूप का सत्य उजागर हो !
तन साँवला हो कोई फर्क नहीं
मन हो उजला गुण-आगर हो !!

दुख में सुख में संग-साथ रहे
विनयी स्वर साधक सागर हो !
मत-भेद को जीत 'प्रकाश' सके
हर हाल में शांत सुधाकर हो !!

28.

ठहरो तुम रूप निवेदन है
किस ओर लिये रथ जा रहे हो ?
हमने कुछ गीत लिखे हैं यहाँ
उनको तुम क्यों ठुकरा रहे हो ?!

अभिनन्दन के स्वर पूछ रहे
इस लोक से क्यों उकता रहे हो ?
हम भी तो 'प्रकाश' चलेंगे वहीं
किसके बल छोड़के जा रहे हो ?!

29.

यदि रूप बनो तुम अर्जुन तो
तुम्हें कृष्णा की भाँति सखा चाहि
यदि कृष्णा बनो तो तुम्हें बलराम-सा
भाई बड़ा सुलझा - चाहिए

तुम रूप 'प्रकाश' जो राम बनो
हनुमान-सा ज्ञानी तपा चाहिए
सब भाँति खरा उतरेगा सदा
कस लो जो कसौटी कसा चाहिए

— प्रका

30.

किस रूप में जाने कहाँ से भुले-
भटके प्रभु आवें अचानक ही !
पहचान न पायें यही भ्रम है
लग जाये न आँख अचानक ही !!

किस रूप में रंग में ढंग में वे
कब द्वार पधारें अचानक ही !
कहते हैं 'प्रकाश' जगे रहना
प्रभु आयेंगे आप अचानक ही !!

31.

कब क्या लिख जाय भरोसा नहीं
लिख दे वह जो कभी सोचा नहीं !
किस शून्य में पुन्य-कथा लिख दे
सपने में 'प्रकाश' ने सोचा नहीं !!

किस रूप की रश्मि निचोड़ चले
किस ओर मुड़े कभी सोचा नहीं !
बड़ ज्ञानी गुमानी गये चकरा
कवि क्या है बला, कभी सोचा नहीं !!

•—❋—•

रूप का एहसान है प्रभु! — याद है
मूलधन से भी अधिक तो ब्याज है!
उऋण होने के लिए हम गा रहे
खोलकर रखते कलेजा जा रहे!!

— प्रकाश

द्वितीय - सर्ग

"साक्षात्कार"

जब जाइयेगा जग छोड़ 'प्रकाश'
अजी ! हँसते हुए जाइयेगा !
यह मेरा - तेरा यहाँ का वहाँ
न प्रसंग हुजूर उठाइयेगा !!

धरती है यहाँ पर फूल उगा
वहाँ गंध-ही-गंध लुटाइयेगा !
निज कर्म - कला से भला से भला
प्रभु - धाम को धन्य बनाइयेगा !!

काम के अंधे गिरे हैं कूप में
क्या धरा है चार दिन के रूप में ?
फूल क्या जिसमें नदारत गंध हो,
भाव से ज्यों हीन जीवन-छंद हो !!

— प्रकाश

"साक्षात्कार"

द्वितीय-सर्ग

1.

रूप, तुम्हारा कहो किस भाँति
करें सत्कार विचार रहे हैं !
लो ! पहले बिन सोचे-विचारे
तुम्हें अपना दिल हार रहे हैं !!

हाँ ! कुछ खोट खयाल में है
उसको तत्काल निकाल रहे हैं !
रात नहा उठी चाँदनी में
यह देख 'प्रकाश' कमाल रहे हैं !!

2.

प्रिय रूप तुम्हें हम पाकर-के
यह जीवन धन्य मना रहे हैं !
यह रात न बीते यही प्रभु से
कर जोड़ 'प्रकाश' मना रहे हैं !!

कवि की यह भावुकता है निरा
पलकें न झपें, ये मना रहे हैं !
तुम तोड़ दो मौन चले कवि की
यह लेखनी नित्य मना रहे हैं !!

3.

क्षण में वह ओझल रूप हुआ
किस ओर कहाँ प्रभु ज्ञात नहीं ?
हम ढूँढ़ते आ पहुँचे उसको
किस ठौर कहाँ, प्रभु ज्ञात नहीं ?!

किस काम का यौवन रूप बिना
हम जायें कहाँ, प्रभु ज्ञात नहीं !
यह माया विचित्र पहेली बनी
क्यों अकेली चली, प्रभु ज्ञात नहीं ?!

4.

ठहरो ! ठहरो !! हम आये अभी
हम आये अभी, ठहरे रहियो !
पड़ी पाँव में बेड़ी बड़ी तगड़ी
पगड़ी न झुके, ठहरे रहियो !!
घनघोर घटा है अमावस की
पथ सूझे नहीं, ठहरे रहियो !
किस ठौर 'प्रकाश' की मंजिल है
ये बता के तो जा, ठहरे रहियो !!

5.

मन की हम बात बता न सके
दृग देखते रूप अघा न सके :
अफशोश ! 'प्रकाश' यही हमको
हम पाकर-के तुम्हें पा न सके
मन नाच उठा दृग मूँद उठे
वह प्रीति अगाध पचा न सके
किस शब्द में भाव भरे कितना
उस भावना को कवि गा न सके

6.

छलका गये रूप यहाँ सहसा
तुम कौन हो मौन पुकार रहे ?
कवि - कोविद - संत 'प्रकाश' थके
हम कौन हैं मौन विचार रहे ?!

हर रूप को कौन उकेर रहा
भव- सिंधु में मौन निहार रहे !
ये रहस्य न जान सके तब लौं —
परलोक को मौन सिधार रहे !!

7.

इस देह में प्राण कहाँ ठहरा
किस बिन्दु पे' रूप विराज रहे ?
हम रूप सवाल तुम्हीं से करें
तुम पे' कर क्यों सब नाज रहे ?!

तुम्हें देखते क्यों मन नाच उठा
यह प्रश्न तुम्हीं से सवाच रहे ।
तुमसे पहले इस सृष्टि में क्या
कविता जनमी कविराज रहे ?!

8.

तुम सामने बैठे रहो हँसते
वरदान महान जहान में हो !
हमें चाहिए क्या दुनिया से भला
तुम रूप बसे जब प्रान में हो !!

तुमसे ही 'प्रकाश' को मान मिला
यह बाँध लो गाँठ ईमान में हो !
तुम ही हो सनातन रूप यहाँ
कवि के हर छन्द-विधान में हो !

9.

कभी आयेंगे, आज नहीं — कहके
हँस-बोल के टाल गये अपना !
निकले कब चाँद निहार थके
दृग में मृग टेर रहा— सपना !!
कवि कल्पना के पर बाँध उड़े
छन में नभ झूल रहे पलना !
कविताई 'प्रकाश' की लोग सुनें
करें याद भुली-बिसरी घटना !!

10.

तुम आ गये आज अचानक ही
तड़के उठके कोई देख न ले !
यह रूप सिंगार-बहार लिए
उपहार लिए, कोई देख न ले ?!
तुम रात में सो न सके, लगते-
थके नैन झँपे कोई देख न ले ?
कवि-कोविद-संत-'प्रकाश' कहो
किस रूप में हो, कोई देख न

11.

तुम्हें देखते ही घर भूल गये -
दुख-दैन्य 'प्रकाश' का भाग जगा
मन चंचल रूप को चूम लिया
दृग चार हुए अनुराग जगा
तुम कैसे मनोहर रूप के हो -
जब स्वामी तथापि विराग जगा
हम सोचते ही रह जाते कभी
किस कारन संत समाज तजा।

— प्रक

12.

ंगुरी चटकार गयी चट-से
झट से झकझोर—पुकार गयी!
न दो मन एक — कहे कंगना
अंगना-दुवरा झनकार गयी!!
चुपके-चुपके चुमकार गयी
कमनीय करों से दुलार गयी!
कभी हाँ कभी ना में 'प्रकाश' फँसा
उर अन्तर प्रीति उभार गयी!!

13.

हम रूप की खोज में हैं निकले
हर मंजिल रूप के पाँव में है।
शहरों में कहाँ किसके दर-पे'—
ठहरें, सब खास तनाव में हैं!!
यहाँ पत्थर तोड़ते-जोड़ते हैं
दिन-रात 'प्रकाश' दबाव में हैं!
हम ढूँढ रहे जिस भावना को
वह प्रीति पुरातन गाँव में है!!

14.

चलते-चलते हम आ पहुँचे
उस गाँव जहाँ तकदीर जगी!
तुम द्वार खड़े झकझोर गये
मन को, उजली तस्वीर लगी!!
यह रूप कहाँ यह गाँव कहाँ
यह देख भयानक पीर जगी!
तन पे लख वस्त्र फटे-लटके
हमको तो 'प्रकाश' फकीर लगी!!

15.

समझे प्रभु ! हाँ, यह तो समझे
गुदड़ी मह लाल कमाल प्रभो !
यह रूप है या मणि-दीप कला
भ्रम में है 'प्रकाश' निहाल प्रभो !!
मन ही यह चोर है साधु यही
मन में विकराल बवाल प्रभो !
इक रूप में रंग हजार भरे
करते किस भाँति संभाल प्रभो !!

16.

कहा रूप ने — सोच रहे कवि क्या —
कुछ जानना चाह रहे हमसे ?
हम तो हैं अनाथ 'प्रकाश' यहाँ
यदि हो कोई काम कहो हमसे !!
कोई नाम-पता हो लिखा तो दिखा
अनजान न कोई यहाँ हमसे !
किसका घर ढूँढ़ रहे हो यहाँ
किस हेतु पधारे कहो हमसे !!

17.

कहीं देखा हुआ लगता हमको
प्रभु रूप बड़ा मनभावन है !
कहिए उससे कुछ और कहे
मृदु है कितना स्वर पावन है !!
हम तो यह सोच 'प्रकाश' रहे
यह रूप ही आग लगावन है !
लगता कोई देख रहा छुपके
कोई और नहीं मन रावन है !!

18.

प रूप को पूजना चाह रहा –
कवि क्यों यह प्रश्न उठा मन में ?
लगता हम आ पहुँचे दर पे –
उस मंजिल के, प्रभु जो प्रन में !!
अब और 'प्रकाश' कहाँ भटके
अटके किस धाम तपोवन में !
मनमोहिनि रूप में आप यहाँ –
प्रभु हैं, हम खोज रहे वन में !!

19.

हाँ-हाँ ! रूप जहाँ तुम देख रहे
उस दर्पन में मुस्कान कहाँ !
भयभीत है रूप न छेड़ो उसे
उस दर्पन मध्य परान कहाँ !!
वह काँच का है टुकड़ा नकली
भटको मत रूप रुझान कहाँ !
खुद ही तुम सोचो 'प्रकाश' विना
अपनी उसकी पहचान कहाँ !!

20.

यह लेखनी है निर्जीव नहीं
कवि की कविता बिन प्रान नहीं !
दिन- रात चले विचरे मन में
कितनी गति से अनुमान नहीं !!
हम रूप के सामने धूप में हैं
फिर भी दुख का कछु भान नहीं !
कहीं भूख भरी कहीं प्यास भरी
चेहरे पे 'प्रकाश' थकान नहीं !

21.

अपराध के बोध से पीड़ित मन
मुस्कान की राह निहार रहा !
पथ में अवरोध अनेक खड़े
मन-ही-मन मौन पुकार रहा !!
विश्वास है संबल जीवन का
मन का निज भार उतार रहा !
यह प्राण 'प्रकाश' का रूप बिना
किस भाँति बचा था, विचार रहा !!

22.

कहिए ! कहिए !! कुछ तो कहिए !!!
हमको झट रूप ने टोक लिया !
हम लौट 'प्रकाश' चले घर को
तब लौं उसने पथ रोक लिया !!
हम क्या कहते-सुनते उससे
दृग कातर खोल विलोक लिया !
कर थाम लिया हँस के-कसके
सहसा दुख दारुण सोख लिया !!

23.

पुलका मन मौन निहार कृपा
उस रूप के रंग में डूब गया !
किस स्वर्ग का धाम का नाम धरें
उस रूप के सिंधु में कूद गया !!
चक-चौंध गयी अँखिया, बखिया-
व्रत की उधड़ी, प्रन टूट गया !
लघु कौन बड़ा है 'प्रकाश' कहाँ
सब भेद धरा पर छूट गया !!

प्रकाश

24.

हते हैं कहाँ किस गाँव के हैं
किससे मिलना हम पूछ रहे!
नगरी यह राम की रामकुटी
कहते हैं कला हम पूछ रहे!!
तुम कौन 'प्रकाश' हो मौन खड़े
थकते भी नहीं हम पूछ रहे!
यदि हो कोई कष्ट कहो हमसे
किस लायक हैं हम पूछ रहे ?!

25.

पहले तो इँहा लो खुला दर है
अपना घर लो अपना घर है!
परदेश से आये थके लगते
बस स्वागत मा यह छप्पर है!!
कुटिया है गरीबन की समझें
जस बाहर है तस भीतर है!
कोई मान-गुमान नहीं मन में
मेहमान के पाँव तले सर है!!

26.

कभी मौन मनोहर रूप लखे
कभी धूप लखे कभी छाँव लखे!
कभी भाल कपोल दो नैन लखे
कभी हाथ लखे कभी पाँव लखे!!
प्रभु सामने रूप 'प्रकाश' लखे
छवि की वह छावनी भाव लखे!
मन से मन का प्रभु मेल लखे
फिर रेत खड़ी वह नाव लखे!!

— प्र०

27.

कितने क्षण के मेहमान यहाँ—
हम हैं, हमको कछु ज्ञान नहीं?
उस स्थिति में हम क्या करते
दिल पत्थर का भगवान नहीं !!
यह रूप है और परिस्थिति ये
हम संत या साधु महान नहीं !
अपने से ही आप 'प्रकाश' कहे
विधि का यह ठीक विधान नहीं !!

28.

वर दे ! वर दे !! मन बोल उठा
हम लौट चले अपने घर को !
कवि हैं कविता उस रूप की है
वह छाँव मिली कहने भर को !!
वह रूप 'प्रकाश' के आंगन में-
उर के, हँसते रहने भर को !
वह रूप धरोहर है जग की
दुख दो प्रभु तो सहते भर को

29.

उसका पति पत्थर था दिल का
पुरुषत्व कहीं कमजोर रहा !
वह मादक रूप करे क्या भला
पति पी-के शराब विभोर रहा
भगवान 'प्रकाश' सुनो न सुनो
तुम से कवि ये कर जोर रहा
यदि रूप दिया तो अनाथ उसे
करके किसके बल छोड़ रहा

—प्र

30.

ते न बने सुनते न बने
कवि की कविता है निदान नहीं !
कओश ! हमें प्रभु ये कहते
विधि की मनमानी विधान नहीं !!
रह 'रूप-कला' प्रभु एक नहीं
गिनती में कोई अनुमान नहीं !
यह बात 'प्रकाश' प्रमान में है
कवि-कल्पना की है उड़ान नहीं !!

31.

कोई आ रहा है कोई जा रहा है
कोई सत्य 'प्रकाश' झुठा रहा है !
कोई साधु बना कोई संत बना
कोई ज्ञानी बना सुलझा रहा है !!
कवि, भैंस के आगे निरर्थक ही
निज बीन-प्रवीन बजा रहा है !
नगरी है अंधेर की फेर सुनो
किसको कविता समझा रहा है ?

32.

कोई रो रहा है कोई गा रहा है
कोई बैठ-के गाल बजा रहा है !
कोई लूट-खसोट भरे घर को
कोई खो रहा है कोई पा रहा है
जिसकी तकदीर बुलन्द यहाँ
दिन-रात दिवाली मना रहा है
दुखिया न 'प्रकाश' ये जी रहा है
प्रभु ! और नहीं मर पा रहा है

•~*~•

— प्रका

जिन्दगी संकल्प का परिणाम है
प्यार तो जिन्दादिली का नाम है !
हम किया करते सदा गुणगान हैं
रूप तो भगवान का वरदान है !!

— प्रकाश

तृतीय - सर्ग

-o-

" स्मृति "
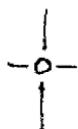
तुम रूप की राशि मनोहर हो
जिससे बगिया महकी मन की !
हम भूल गये छल-छन्द सभी
कभी चाह नहीं चहकी धन की !!

धनवान गये बीरवान गये
ठहराव न ज्ञात किसी छन की !
इतना बस ज्ञात 'प्रकाश' को है
कविता है धरोहर जीवन की !!

भीतरी गर मन नहीं मजबूत है
ऊपरी तन का दिखावा झूठ है!
साथ हँसने और रोने के लिए
चाहिए कुछ पास खोने के लिए!!

स्मृति / 30 —प्रकाश

" स्मृति "

-o-

तृतीय - सर्ग

1.

फिर रूप ने टोक लिया हमको
कवि हो तो हमारी व्यथा लिखना !
हम नारी - अनारी - गँवारि सही
इस 'रूप–कला' की कथा लिखना !!
तुम मौन ही मौन निहार चले
यदि संभव हो तो पता लिखना !
कर देना 'प्रकाश' क्षमा हमको
त्रुटि हो यदि कोई खता लिखना !!

2.

ललकार रहा वह रूप हमें
फटकार 'प्रकाश' समाज सुने !
कवि मौन रहा क्यों न बोल सका
इस प्रश्न को रीति - रिवाज सुनें !!
हम तो मेहमान घड़ी भर को
लिखना सच ही कविराज सुनें !
विधि का न लिखा मिटता, जो कहें
वे मुनीब विधाता के आज सुनें !!

—प्रकाश

3.

जब रूप की लाज बचा न सके
किस धर्म की लाज बचाइयेगा ?
जब आँख का पानी ही सूख गया
किस घाट पे' आप नहाइयेगा ?!
उड़िये जिस ओर जहाँ उड़िए
फिर लौट धरा पर आइयेगा !
जब आइयेगा तो 'प्रकाश' सुनो
धरती को हसीन बनाइयेगा !!

4.

कविता लिखना कोई खेल नहीं
युग- धर्म सनातन शोध का है !
कवि की ये सुकोमल भावना है
यह कर्म न लालच- लोभ का है !!
परिणाम 'प्रकाश' है चिन्तन का
सत्- धर्म प्रणम्य प्रयोग का है !
कविता है कला दिल जोड़ने की
कवि- कर्म अनालस योग का है !

5.

बिन कर्म किये हित हो न सका
बिन ज्ञान न बुद्धि विकास करे !
जहाँ साध है धर्म 'प्रकाश' वहीं
बिन धर्म के कर्म विनाश करे
कविता मन से उपजी, मन ही -
शुचि धारक है विश्वास करे
मन- प्राण सुशुद्ध - प्रबुद्ध करे
कविता दुख का एहसास करे

— प्रक

6.

ह आ रही ! आ गयी !! आ ही गयी !
मन में वह पीर जगा ही गयी !

ह कैसा समाज 'प्रकाश' कहो ?
लो ! समाज को पूरे भुठा ही गयी !!

यह रीति-रिवाज ढकोसला है
दिल-फाड़के दर्द दिखा ही गयी !

यह जाति है पाँति गँवारन के
वह प्रश्न सभा में उठा ही गयी !!

7.

तुम 'रूप-कला' विश्वास करो
मन रो रहा है कवि मौन नहीं !

दुख एक अकेल तुम्हार नहीं
तुम्हें जानता है यहाँ कौन नहीं ?

बस भोग-विलास का साधन ही
यह रूप है क्या ? कवि मौन नहीं !

अबला-अबला दिन-रात बजा
तबला यहाँ पीटता कौन नहीं !!

8.

हम बात घुमा के फिरा-के नहीं
कहते हैं कभी — सब जानत हो !

मन में जो उठा कह साफ दिया
मउतो के नहीं डर जानत हो !!

मलखान औ' दाऊद, गब्बर तो
बड़ नामी सबै जग जानत हो !

बखिया' केतना 'मस्तान' यहाँ
सरकार चलावत जानत हो ?!

— प्रक

9.

कथनी कुछ और करें करनी-
कुछ और, समाज गला रहे हैं!
बहुरूपिये रूप को तोड़-मरोड़
किसी विधि राज चला रहे हैं!!

निज देश की लाज-हया सबको
गिरवी रख साज रचा रहे हैं!
नकली है जो रूप 'प्रकाश' उसे
असली कह शोर मचा रहे हैं!!

10.

वह भेड़ के रूप जिया रहे हैं
हमें झुण्ड में तोड़-बँटा रहे हैं!
हमें वोट का बैंक 'प्रकाश' बना
उंगली पर जोड़-घटा रहे हैं!!
कहीं जाति के नाम पे कूद पड़े-
उस कूप में, जो कि भठा रहे हैं!
कहीं धर्म के नाम पे जूझ मरे
किस घाट को नाव लगा रहे हैं

11.

हर रूप के रंग हजार गढ़े,
हमें तंग गली में चला रहे हैं
बहुरूपिये हैं, हर बार यहाँ
नित - नूतन रूप ढला रहे हैं
असमंजस में हैं 'प्रकाश' सभी-
अपने को सही बतला रहे हैं
हम हैं कि वहीं के वहीं ठहरे
हमको फुसला-बहला रहे

12.

नरा खोल के आँख 'प्रकाश' लखें
चश्मा ये नवीन उतारिये तो !
अबला है अकिंचन क्यों जग में
अबला बिन सृष्टि विचारिये तो !!
यह मां है कहीं तो कहीं बहना
पत्नी बिन रूप सँवारिये तो !
यह दोष तो दृष्टि की सोच का है
उसे प्रेम से आप पुकारिये तो !!

13.

सच तो बस एक है एक वही
अबला - सबला में विराज रहा !
झपके पल एक मजाल नहीं
यदि दीनदयाल नराज रहा !!
अभिमान - गुमान करें हम क्यों
किसके सिर स्थिर राज रहा ?
जिस हेतु 'प्रकाश' मिला तन ये
करता कल था कर आज रहा !!

14.

सुन 'रूप-कला' तुम संसद में
पहुँचो अपना दुख - दर्द कहो !
जितने पथ - भ्रष्ट शराबी - जुवाड़ी -
घोटाली हैं, जाओ बे-पर्द करो !!
अबला जो कहे सबला बन के
तन-के झकझोर दो तर्क धरो !
संग में है जमाना 'प्रकाश' सुनो
तुम बेड़ा लुटेरों के गर्क करो !!

15.

इनती - विनती - गिनती न पढ़ो
बहरे हैं वहाँ सब ना सुनिहैं !
जब जोड़ोगी हाथ हँसी करिहैं
निर्लज्ज हैं बेहया ना सुनिहैं !!
सब भ्रान्ति हरो, जन - क्रान्ति करो
बिन ठोंके - ठेठाये वे ना सुनिहैं !
बिन प्राण 'प्रकाश' हथेली लिये
सुन ' रूप - कला ' कछु ना सुनिहैं !!

16.

तुम गीता पढ़ो ! इस जीवन का -
सब मर्म, खुला इतिहास सुनो !
जब आये तो लाये यहाँ तुम क्या
तब खोने का क्या डर बात सुनो !!
न निवेदन दुष्ट सुनें तो करें -
हम क्या, कहते प्रभु — बात सुनो !
इस धाम - धरा पर धर्म है क्या
शुभ - कर्म भला क्या 'प्रकाश' सुनो !

17.

खुद ही इतिहास 'प्रकाश' रचो
तुम झाँसी की रानी की बानी सुनो !
अबला वह थी कितनी सबला
रण कूद पड़ी मरदानी सुनो !!
तुम मीरा की पीड़ा - पहाड़ लखो
उसकी वह दर्द - कहानी सुनो !
प्रभु की तुम भक्ति से शक्ति गहो
यह देह तो आनी है जानी सुनो !!

18.

ख का दुख का कुछ अर्थ नहीं
बस अर्थ 'प्रकाश' लगाव का है!
कवि की यह भावुकता कहके
मत टालिए भाव सुभाव का है!!

कोई दीन-अदीन हो भेद नहीं
बस भेद प्रधान स्वभाव का है!
किस जाति का धर्म का है दुखिया
कोई बात न, प्रश्न जुड़ाव का है!!

19.

कवि मस्त है मस्त रहे जग ये
कवि का यह काम्य प्रधान रहा!
कोई खेल ही खेल में पाँव 'प्रकाश'-
का तोड़ न दे, यह ध्यान रहा!!

धुँधली तस्वीर सही जो दिखी
करता कवि ज्योतिर्मान रहा!
कवि का पहला यह धर्म, दुखी-
जन में भरता, उन्मान रहा!!

20.

उंगली जो उठायें, उठाया करें
कविता यह दोष निकारा करें!
जस की तस बात उतार रही-
कविता न रुचे तो किनारा करें!!

कहीं दीन-दुखी न दबें-कुचलें
कवि का यह धर्म इशारा करे!
निज देश-दशा का स्वरूप कहीं
बिगड़े तो 'प्रकाश' पुकारा करे!!

—प्रकाश

21.

अभिमान नहीं उपजे मन में
सबसे बड़ी जीवन साधना है!
फिर धर्म तो आप से आप फले
अपना तो 'प्रकाश' ये मानना है!!
जहाँ धर्म वहाँ सत्कर्म खिले
यही अर्चना-पूजा-आराधना है!
सबके उर प्रेम-दया-करुणा-
उपजे, कवि की मनकामना है!!

22.

मन ही यह हेतु है जीवन का
इस हेतु को आप संभालिएगा!
मन चंचल है किस ओर कहाँ
कब पाँव बढ़ा दे, संभालिएगा!!
मनमानी 'प्रकाश' करे न कहीं
मन-योग से जिद्द संभालिएगा!
कहीं संयम का यह बाँध न तोड़के-
नाव डुबो दे, संभालियेगा!!

23.

मन में अभिमान गुमान बसे
मद-लालच-क्रोध-कराल बसे!
मन द्वेष-घृणा का समन्दर है
बिगड़े तो प्रपंच-बवाल बसे!!
सत्संगति में जो 'प्रकाश' पड़े
मन में उपकारी ख्याल बसे!
दुखिया-जन का यह पीर हरे
मन में प्रभु दीनदयाल बसे!!

—प्रकाश

24.

न में यदि साहस शक्ति नहीं
यह जीवन प्राण समूल हरे !
यदि हार गया मन, जीत नहीं -
सकते रन में, मत भूल करें !!

यदि गाँठ पड़ी है कहीं मन में
पग-पे-पग संकट शूल भरे !
मन साफ 'प्रकाश' का है तो कहीं
मुस्का दे तो मोहक फूल झरे !!

25.

कोई जीत जहान ले ताकत से
उस जीत को जीत नहीं कहते !
सबके हित में जो 'प्रकाश' न हो
उस नीति को नीति नहीं कहते !!

कोई माने न माने विवाद नहीं
बिन दर्द के, गीत नहीं कहते !
अपनापन ही जब टूट गया
दिखलावे को प्रीति नहीं कहते !!

26.

चलिये ! चलिये !! चलते रहिये !!!
मत रोक के राह खड़े रहिए !
मत खींचिए पाँव किसी का कहीं
मिलि-जुलि के साथ बढ़े रहिए !!

गति जीवन है, गति भंग न हो
मत जिद्द पे व्यर्थ अड़े रहिए !
दुख में भी 'प्रकाश' सदा हँस-के
यह जीवन युद्ध लड़े रहिए !!

—प्रकाश

27.

जब मौत सुनिश्चित है जग में
फिर मौत से आखिर क्या डरना!
डरना है तो जीवन से डरना
हर वक्त 'प्रकाश' जगे रहना !!
मुख मोड़ ले कौन कहाँ किससे
किस वक्त, नहीं इसकी गणना!
इस हेतु कदाचित भूल के भी
अपमान किसी का नहीं करना !!

28.

दुख ही दुखिया का बिछावन है
वह दर्द- सलामत ओढ़ता है।
हँस के दुख को झकझोरता है
प्रभु से मन को वह जोड़ता है !!
उर-प्रेम-श्रद्धा धन निर्धन का
दुख में न कभी मुख मोड़ता है
प्रभु में लवलीन 'प्रकाश' कभी-
दुखिया का नहीं दिल तोड़ता है

29.

दुखिया जन का मन मन्दिर है
जिसमें भगवान जिया करता!
जहाँ सूर-कबीर समाधि लगा
रसखान अजान किया करता !!
जहाँ प्रेम- श्रद्धा- विश्वास-दया
दिल खोल के प्रीति दिया कर
उस मन्दिर के दर नित्य 'प्रकाश'
झुका निज शीश लिया कर

30.

कवि - कोविद - संत - फकीर कहें
दुख का अपना इक दर्शन है।
गर सोच है साफ 'प्रकाश' यही
दुख - दर्द समाज का दर्पन है!!
दुखिया तन की परवाह नहीं -
कतई करता, मन अर्पण है।
बलिदान लिखा करता हँस-के
रचता रहता परिवर्तन है!!

31.

इसका यह अर्थ नहीं, दुखिया -
करता सुख की कुछ चाह नहीं!
फिर भी सुख हेतु 'प्रकाश' कहीं
वह तोड़ता नीति का पाँव नहीं!!
दुखिया के उमंग के रंग सदा
रखता मन में दुर्भाव नहीं!
करता रहता फरियाद सदा -
प्रभु से, रचता अलगाव नहीं!!

32.

प्रभु के दरबार में दीप जला
दुखिया खुश तो खुशहाल धरा!
अँधियार मिटा उजियार खिला
चहकी चिड़िया, खुशहाल धरा!!
रवि चूम लिया, विहँसी कलियाँ
महकी बगिया, खुशहाल धरा!
कवि मस्त 'प्रकाश' बहे पुरवा
टपके महुवा, खुशहाल धरा!!

 —प्रकाश

33.

उस रूप को देखा, कमाल दिखा
मुस्कान उकेर गयी चुपके !
वह आँख बचा करके जग से
वरदान उड़ेल गयी रुक के !!
हम तो बस देखते रूप रहे
कर में कर थाम लिए छुपके !
कोई देख न ले यह प्रश्न हमें
झकझोर 'प्रकाश' गये दुबके !!

34

फिर आइयेगा ! कहके उंगली
चटकार गयी कसके-हँसके !
हमने कहा — डोली कँहार लिए
हम आयेंगे द्वार कभी डटके !!
यह रूप सिंगार अपार लिए
मत डोलो यहाँ या वहाँ घर से !
यहाँ रूप को पूजने वाले नहीं—
हैं, 'प्रकाश' सचेत गया डरते !!

35.

जो डरा सो मरा — कह चूम के भाल
गयी वह चूम, पुकार गयी !
हम लाज के मारे झुका लिए शीश-
जो गाल-गुलाल, सँवार गयी !!
मलिका वह रूप की नाच उठी
अचके, भरते अँकवार गयी !
हम प्यार में पागल ढूँढ़ रहे
किस ओर गयी किस पार गयी !!

— प्रकाश

36.

कोई स्वर्ग से सीधे परी उतरी
हमको तो लगा, मनुहार गयी !
इस लोक में दूसरा रूप यहाँ
कोई और नहीं ललकार गयी !!
कब आयी-गयी हमको क्या पता
झप से झपकी भर मार गयी !
कोई माने न माने 'प्रकाश' भले
हर छन्द का फन्द निखार गयी !!

37.

यह होली है हो-ली तुम्हारी प्रिया
भरी हाट में ठाट, तोहार भला !
सब देख-के दंग 'प्रकाश' हुए
जब भंग चढ़ा है तोहार भला !!
करना कोई प्यार है पाप नहीं
फटकार गयी है, तोहार भला !
कहीं चोरी-डकैती तो की है नहीं
पिय के संग हो-ली, तोहार भला !!

38.

हम वैद्य के पास गये तड़के
बलखाती वहाँ, तड़पाती यहाँ !
किस राह में घाट में फाट पड़े
दिन-रात पतंग लड़ाती यहाँ !!
कोई रोक न टोक सका उसको
दिल में कस-के घुस जाती यहाँ !
इसका क्या 'प्रकाश' ईलाज कहो
रहती है कहीं, मुस्काती यहाँ !!

•—✱—•

—प्रकाश

अधर का मुस्कान जिस दिन चुक गया
प्रेरणा का स्रोत मानो सूख गया !
चाहिए मन साफ कहने के लिए
रूप का दामन पकड़ने के लिए !!

•—o—•

—प्रकाश

चतुर्थ - सर्ग

—o—

" अतीत "

सब बात अतीत की, प्रीति नयी
रचना है नयी, फनकार नया !
यह रूप वही मुस्कान वही
सब बात वही उद्‌गार नया !!

दरबार वही सरकार वही
सब बात वही अखबार नया !
दिन - रात 'प्रकाश' चला फिर भी
दुखिया है वहीं, हरकार नया !!

"अतीत"

चतुर्थ - सर्ग

1.

लिख ले ! लिख ले !! कवि ले लिख ले
अस 'रूप-कला' न कहीं पइहो !
हर रूप के रंग हजार यहाँ
अस बात-विचार नहीं पइहो !!

कोई बात छिपी है 'प्रकाश' नहीं
विधना के बिगार नहीं पइहो !
इस लोक रहूँ, परलोक रहूँ
अस प्यार-दुलार नहीं पइहो !!

2.

हम थी तो बड़े घर में जनमी
ममता परलोक सिधार गयी !
वह कन्या कुँवारी बनी जब माँ
बहती नद-धार में डार गयी !!

रही चाँदनी रात दुलार गयी
चंद नाव नदी उस पार गयी !
विधवा थी निपूत 'प्रकाश' हमें
निज गोद में पाल सँवार गयी।

3.

प प्यार-दुलार मिला हमका
ममता की धनी महतारी मिली !
न-रात बजावत ढोल फिरे—
'नदिया के किनारे बेचारी मिली !!
नड़की वह जान के त्याग गयी
था कि और विपत्ति की मारी मिली !
कुछ भी हो 'प्रकाश' हमें क्या पता
हमरे हित तो उपकारी मिली !!'

4.

चलने-फिरने-हँसने भी लगी
कहने-सुनने-गुनने भी लगी !
तुमसे क्या 'प्रकाश' छिपायें भला
सपने मन में बुनने भी लगी !!
सब रूप की रानी कहें हमका
खुद अच्छा-बुरा चुनने भी लगी !
पर दाग अतीत की ढोती रही
कभी ओट में जा छुपने भी लगी !!

5.

जस खेल विधाता को ठीक लगे
वह खेल रचें कोई रोक नहीं !
जब चाहें उजाड़ें—बसावें जिसे.
उनके मन के—कोई रोक नहीं !!
तुम भी तो 'प्रकाश' नहीं कम हो-
उनसे, कवि हो कोई जोंक नहीं !
विनती है यही जितना लिखना
उतना लिखना सच, शोक नहीं !!

—प्रकाश

6.

कुछ काल रही खुशहाल प्रभो !
विधि की ये विडम्बना मार गयी !
कहीं रोग-बयार नहीं–विधवा
तड़पी परलोक सिधार गयी !!

जब लौं कुछ चेत सकी तब लौं
अबला ठहरी–उस द्वार गयी !
जिस द्वार 'प्रकाश' न प्यार मिला
करती क्या भला हम हार गयी !:

7.

यहाँ कौन अनाथ का भार गहे
समझो हम जिन्दगी हार गयी !
जिसने भी निहारा हमें वह काम-
का मारा, कहो कि संभार गयी !!

हम लेइ लुवाठा चली जब हाथ-
हो क्रोध में लाल अंगार गयी !
दिल के तुम साफ 'प्रकाश' सुनो
तुम से ये रहस्य उघार गयी

8.

प्रिय! जीवन के इस पार तुम्हीं को
ये 'रूप-कला' दिल हार सकी
तुम रूप-कला के पुजारी प्रभो!
कह के दुख भार उतार सकी

मनमोहन श्याम कहीं बनवारी
कहीं कह कृष्णा पुकार थकी
तब 'रूप-कला' को 'प्रकाश' मिले
हँस-बोल के रूप सँवार सकी

9.

'रूप बना अस भार 'प्रकाश'
गयी थक-हार न पार लगी !
मझधार में नाव खड़ी लहरें
हल्कोरें, भयावह धार लगी !!
यह सृष्टि रची प्रभु ने इतनी
शुचि-सुन्दर किन्तु उजाड़ लगी !
इस लोक में 'रूप-कला' की कहीं
कुछ कद्र नहीं-दुत्कार लगी !!

10.

हम जायें कहाँ इस जीवन में
दुख ही दुख जीवन भार लगा !
दुख तो है हमें पशु से भी गिरा
यहाँ आदमी का व्यवहार लगा !!
यहाँ जो भी मिला उसकी कथनी-
करनी में बिभेद अपार लगा !
तुम मानो न मानो 'प्रकाश' भले
तुम्हें देख-के जीवन पार लगा !!

11.

कुछ लोग बाजार में ले-के चले
हमें बेचने, चीख के हार गयी !
वहीं लोग तमाशा लखें, उनसे-
हम जोड़-के हाथ भी हार गयी !!
तब द्रौपदी की हम भाँति, बचाओ-
बचाओ मुरारी ! पुकार गयी !
तब यों हमें उक्ति 'प्रकाश' सुझी
देह घप्प से घोंप कटार गयी !!

—प्रकाश

12.

छटकी कर से कुछ दूर गिरी
उनहू गिरते छितराय गये !
पुनि दौड़ पड़ी ललकार उन्हें
सब ले-के परान पराय गये !!
दुर्गा जस रूप हमार रहा
लखि लोग सबै चकराय गये !
हमको तो 'प्रकाश' लगा खुद ही
प्रभु आकर लाज बचाय गये !!

13.

यह गाथा 'प्रकाश' बने इतिहास-
तोहे सब बोल लिखाय गयो !
भगवान न जाने कहाँ से कहाँ
गिरते-पड़ते पथ पाय गयो !!
तोहसे हम लाज करीं अब का
सब गाथा सही जो सुनाय गयो !
जस छन्द बना तुक-ताल भिड़ा
सच बात रही सो बताय गयो !!

14.

अब आगे सुनो क्या हुआ - हम जेल-
गयी, पहनाई नकेल गयी !
वह जेल भी क्या समझो हमको
प्रभु ! नर्क में स्थिति ठेल गयी !!
जहाँ एक से एक गुनाह बड़े
करके पहुँचे, उस सेल गयी !
यह रूप सिंगार 'प्रकाश' कहीं
समझो यह जीवन झेल गयी !!

—प्रकाश

15.

हमको अपराधिन लोग कहें,
करते हैं घृणा, क्या समाज यही ?
हम चीख के हार गयी, सब लोग -
तमाशा लखें - क्या रिवाज यही ?!

अबला बन के सबला कस घोंपे
कटार ? खड़ा है विवाद यही !
तुमसे हम पूछ रही हूँ 'प्रकाश'
तुम्हें तो कहीं स्वराज नहीं ?!

16.

स्वराज नहीं ! स्वराज नहीं !!
तुमने वह राह नयी रच दी !
जिस राह चलें निर्द्वन्द्व सभी
अबलाओं में शक्ति नयी रच दी !!

तुम में वह 'रूप-कला' बल है
बदले जो समाज - दिशा रच दी !
कवि का अपना क्या 'प्रकाश' भला
जो दिखा सो - नयी कविता रच दी !!

17.

अब सोइये ! रात के तीन बजे
तन का कछु ख्याल किया करिये !
हम नाहक छेड़ गयी दुखड़ा
सुन के कछु टाल दिया करिये !!
हमको तो 'प्रकाश' नहीं कछु चाहिए -
आपसे, आप जिया करिये !
हमरे अस और अभागिन के
दुखड़ा सुन टाँक लिया करिये !!

—प्रकाश

18.

तुलसी हैं जहाँ — वहाँ सूर नहीं
कबिरा है जहाँ — रसखान नहीं
जितने कवि हैं उतनी कविता
कविता कवि की पहचान रही।
जितने हैं यहाँ प्रभु फूल खिले
सबकी अपनी मुस्कान नई।
कविराज 'प्रकाश' सुनो हमसे
कवि चीज है क्या हम जान गई

19.

कवि चीज है क्या, फिर से तो कहो -
तुम 'रूप-कला' हम भी समझें
यह बात अजीब लगी सुनके
कहते हैं 'प्रकाश' अजी हँस के
तुम हो न पढ़ी न लिखी फिर भी
जग में यह ज्ञान मिला कसके
या कि ठोकर खा-के गिरी, गिरते-
उठते सब जान गई रस्ते !!

20.

प्रभु के दरबार गयी हम थी
कहने दुखड़ा प्रभु टाल गये !
वहीं बैठे विधाता रहे सट-के
वह टोक हमें तत्काल गये !!
विधि के वक्ता कवि हैं जग में
सब भार उन्हीं पर डाल गये
दुख-दर्द 'प्रकाश' लिखो विधि से
विधि तो लिख लाख बवाल

21.

विधि ने यह रूप रचा, कवि ने
रचना रचि रूप सँवार दिया !
रवि जा न 'प्रकाश' सका है जहाँ
पहुँचा कवि रूप निखार दिया !!
मन में प्रभु का है निवास - वहाँ
पहुँचा कवि झाड़-बुहार दिया !
इस हेतु यहाँ विधि ने कवि को
प्रिय ! बुद्धि-विवेक-विचार दिया !!

22.

कवि से है बड़ा कोई वैद्य कहाँ
बिन नब्ज धरे सब हाल कहे !
जो न बोल सके मुँह खोल सके
उसका उर खोल खयाल कहे !!
जग छोड़ गये फिर भी उनसे
कवि मुक्त सवाल-जवाब करे !
सच-झूठ को तौल 'प्रकाश' सही
बतलाकर दूर मलाल करे !!

23.

अब जानना चाहोगे मुक्त हुई-
कस जेल से ये भी कथा सुन लो !
अभी शून्य दयालुओं से धरती-
न 'प्रकाश' हुई है कथा सुन लो !!
कवि का दिल पत्थर का न रहा
न रहेगा कदापि, कथा सुन लो !
इस 'रूप-कला' की व्यथा सुन के
कवि ही कोई रोये, कथा सुन लो !!

24.

सुन के दुख-दर्द कथा, न पता-
किस सोच में डूब गया जज था!
फिर पोंछत अश्रु रुमाल से वो
झट चैम्बर-मध्य गया जज था!!
सब देख-के दंग रहे, क्या हुआ?
यह केस-विशेष नया जज था!
हम तो कह साँच 'प्रकाश' गयी
सुन पीर गंभीर हुआ जज था!!

25.

कुछ ही क्षण बाद कमाल हुआ
सुन फैसला दंग मिजाज रहा!
करते हुए मुक्त बेदाग, सुनो
जज ने कहा दोषी समाज रहा!!
यह निर्णय आज सुरक्षित है
कल का यह फैसला आज रहा
सुन के न 'प्रकाश' अचम्भित हो
जज और नहीं कविराज रहा!!

26.

हम तो न पढ़ी न लिखी कुछ भी
विधना के विधान रुलाते गये
जब अश्रु से बोझिल नैन हुए
तुम पीकर पीर हँसाते गये!!
दुख में भी हँसे मन मुग्ध रहे
तुम जीवन-संधि कराते गये!
यह भी कम क्या है 'प्रकाश' सुनो
दुख को कर से सहलाते गये!!

27.

तुम काव्य कला में नवीन जमीन-
तलाशते पाँव बढ़ाते गये !
बदरूप को धूप में ला-के सुखा
उसकी पहचान बनाते गये !!
हम तो बनजारिनि कीचड़ में
जनमी, सब ओर धँसाते गये !
कविराज 'प्रकाश' निकाल हमें
हर ढंग से रूप सजाते गये !!

28.

किस हेतु यहाँ जनमी, हमको
तो यही न पता किस रूप में थी !
जनमी जिस कोख में, सूख गयी-
ममता, वह माँ किस रूप में थी ?!
बस कर्ण-कथा सुनके हमको
कुछ भास हुआ किस रूप में थी !
वह कुन्ती 'प्रकाश' बताती रही-
हमको, वह माँ किस रूप में थी !!

29.

भगवान कहाँ किस रूप में है
हमको है पता - कहिएगा नहीं !
जनमी थी जहाँ - या पली थी वहाँ
हमको है पता - कहियेगा नहीं !!
न अतीत में है - न भविष्य में है
हमको है पता - कहिएगा नहीं !
भगवान 'प्रकाश' के प्यार में है
हमको है पता - कहिएगा नहीं !!

—प्रकाश

30.

काहिमेगा नहीं अपने दुख को
सुनिहें सब लोग, हँसी करिहें।
सबसे तुम जीत गये, सुन लो
अपने से जो हारे, हँसी करिहें॥
कम ही कुछ लोग यहाँ मिलिहें
दुख में सटिहें - न हँसी करिहें।
दुख तो दुख है न 'प्रकाश' छिपे
सुन के दुख - दुष्ट हँसी करिहें॥

31.

केबने हम खेत के मूली अहैं
नहिं वेद लखैं न पुरान पढ़ें।
बंगला में बसे श्रीमान बने
उनके भीतरा इनसान पढ़ें!!
कुछ लोग 'प्रकाश' हँसी मनिहें
हम खेत पढ़ें - खलिहान पढ़ें।
जेतने फुटपाथ पे लोग पड़े
उनके हम दर्द-निशान पढ़ें!!

32.

सबके बस की यह बात नहीं
उपकार करें तो न याद करें!
जेतना भल ना करिहें ओहका
केतना गुन जाने बियाज धरें
जेतना के हकीम दवा न दिहैं
फिसिया केतने गुन लादे पें
मनई - मनई से 'प्रकाश' यहाँ
बिन स्वारथ लागि न बात कें

" उद्बोधन "

पंचम - सर्ग

जितने हैं चरित्र बड़े से बड़े -
कवियों ने 'प्रकाश' लिखाय लिये !
'तुलसी' ने जमीन लिखा-ली सबै
सुन ' सूर ' आकाश लिखाय लिये !!
केतने कवि तो भुँइ लोट गये
केतने बनवास लिखाय लिये !
जो बचे हैं अजी ! बड़े मौज में हैं
सबके बकवास लिखाय लिए !!

रूप है आधार युग-निर्माण का
वेद हो या शास्त्र, शाश्वत ज्ञान का !
रूप ही हर देश की पहचान है
रूप की इज्जत हमारी शान है !!

—प्रकाश

पंचम - सर्ग

"उद्‌बोधन"

1.

कहने लगी 'रूप-कला' हे प्रभो !
कोऊ आगे न पीछे न जेठ-जेठाने !
रूप 'प्रकाश' कला के लिए -
कवि, रूप में रंग भरे मनमाने !!
रूप के धूप में खूब तपे बिन
व्यर्थ तपी, कवि-कोविद जाने !
संत मिली पदवी कवि को
'रतना' बिना क्या 'तुलसी' अनुमाने !!

2.

बात पड़ी तब बोल रही यह
'रूप-कला' कवि क्यों अकुलाने ?
कामना डोल रही उर काम की
भावना को भर पेट रुलाने !!
नारी की सारी दुशासन खींच -
रहा था, रहे सब मौन सयाने !
प्रश्न 'प्रकाश' वहाँ का यहाँ
इतिहास लगा खुद को दुहराने !!

 —प्रकाश

3.

प्रान का मोह नहीं हमको, कस-
लाज बचे प्रभु आज बता ?
सच मानो 'प्रकाश' पधार गये -
प्रभु बोले पुकार समाज बचा !!
ले कटार उन्हीं अपराधियों से-
झट छीन के, रूप का साज बचा !
हम तो हैं खड़े तुम कर्म करो
घट घोंप कटार दे लाज बचा !!

4.

हर स्थिति और परिस्थिति का-
ही, सदा इनसान गुलाम रहा !
यदि 'रूप-कला' यह हिंसक है
तब धर्म कहाँ किस काम रहा ?
प्रभु ! सत्य बिना तो अहिंसा अकेले-
का नाम सदा बदनाम रहा !
कभी तथ्य को जाने बिना परिणाम-
'प्रकाश' न अर्थ-प्रधान रहा !!

5.

प्रभु है कि नहीं, यदि है तो कहाँ ?
सब व्यग्र हो खोज रहे वन में !
सब तीरथ-धाम तो छान लिए
किस रूप में है किस कानन में ?
कोई त्याग समाज को भाग चला
कहीं बैठ गया है गुफा-घन में
दिन-रात 'प्रकाश' लिखा करता
कविता प्रभु के अभिनन्दन में

 प्रव

6.

टके- भटके सब खोज सकें
पथ जीवन का, रवि जाग रहा !
वि अस्त चले नभ छोड़ भले
'दिन - रात' यहाँ कवि जाग रहा !!
सद्ग्रन्थ उठा लो 'प्रकाश' पढ़ो
हर शब्द सहायक जाग रहा !
दुख में सुख में सब मस्त रहो
प्रभु प्राण विधायक जाग रहा !!

7.

जलती है चिता सब देख रहे
यह रूप सभी पहचान रहे !
इस रूप से आँख मिला न सके
सब भाग बचाकर प्रान रहे !!
यह कैसी विडम्बना देख 'प्रकाश'
कि सत्य को झूठ बखान रहे !
कस - लूट - खसोट भरे धन से
रच एक-से-एक विधान रहे !!

8.

सुख है दुख है किसको कितना
इस रूप का रंग प्रमान नहीं !
दुख में भी हँसे मन मस्त रहे
सुख में भी कहीं मुस्कान नहीं !!
यह - भेद-विभेद है गूढ़ प्रभो !
मति मूढ़ 'प्रकाश' को ज्ञान नहीं !
तन मंदिर में, मन घूम रहा
टिकता है कहीं क्षण-मान नहीं !!

—प्रकाश

9.

सुख हेतु बटोर रहा धन को
फिर भी दुख साथ न छोड़ सका !
दुखिया दुख काट रहा हँस के
प्रभु से न कभी मुख मोड़ सका !!
दुख हो सुख हो, न 'प्रकाश' कभी -
प्रभु का मन-मन्दिर तोड़ सका !
अभिमानियों के स्वर में अपने
स्वर को न कदाचित जो सका !!

10.

फिर लौट के आ न सका जो गया
अपना तो 'प्रकाश' यही मत है !
जो गया तो गया किस लोक में वो
यह प्रश्न कचोट रहा सच है !!
यह मृत्यु का लोक है । जन्म जहाँ
वहाँ मृत्यु सुनिश्चित है - सत है !
इस हेतु 'प्रकाश' हो मस्त सदा
धरती को सँवारने में रत है !!

11.

यह पीढ़ी रहे दर पीढ़ी रहे -
सुख से, यह मुक्कि भिड़ा रहे हैं !
कुर्सी के लिए फुर्ती कितनी
बिन मेल का मेल मिला रहे हैं !!
जन सेवक हैं अधिकार इन्हें
जन से जन जोड़-घटा रहे हैं !
मत भेद की आग में झोंक 'प्रकाश' -
हमें, यह जश्न मना रहे हैं !!

—प्रकाश

12.

जिसने भी कहा कुछ प्रेम से तो
उसको कभी बात न टाल सका !
अभिमानियों के स्वर के स्वर में
अपने स्वर को न बिठाल सका !!
बस दोष 'प्रकाश' का है इतना
बन जो न किसी का दलाल सका !
सच है युग के अनुरूप नहीं
अपने को कदाचित ढाल सका !!

13.

'ने' का है अर्थ कि नेक करे कुछ
काम प्रणम्य सुनाम कमाये !
'ता' का है अर्थ कि ताज चढ़े सिर-
तो, उस ताज का मान बढ़ाये !!
'ने' धन 'ता' मिलि 'नेता' बने-
तो, 'प्रकाश' सुरम्य स्वधाम बनाये !
आज यही कहते सुख चाहिए
राम हमें सुख-राम बनायें !!

14.

'रूप-कला' कहते-सुनते प्रभु !
रोने लगी किस भाँति हँसायें !
है लगता इस रूप में भारत-
माँ है खड़ी खुद, सत्य बतायें !!
है हमको अफशोश कहाँ -
किसने उस रूप को शूल चुभाये !
ध्यान 'प्रकाश' का खींच लिया
पद छूकर छन्द के फूल चढ़ाये !!

—प्रकाश

15.

उर बोध करो युग-बोध करो
उद्‌बोधन रूप का बोध करो !
बहती सरिता, कलियाँ किलकीं
सम्‌बोधन रूप का बोध करो !.
रवि-रश्मि बिखेर गया वन में
अनुमोदन रूप का बोध करो !
अँधियार 'प्रकाश' मिटा छन में
संशोधन रूप का बोध करो !

16.

जब सौम्य स्वरूप 'प्रकाश' लखे
प्रभु खेलत गोद में बालक हैं !
मुस्कान बिखेर रहे मन में
प्रभु कष्ट हरें प्रतिपालक है !!
मुख चूम रहे लिपटे तन में
प्रभु प्रेम करें, सुखदायक हैं !
जित देखिए रूप अनूप लगे
प्रभु रूप-कला-निधिनायक हैं

17.

रूप है एक अनेक नहीं, पर
रंग हजार भरा उसमें !
विहँसे जब रूप निहारिये तो
कितना शुचि प्यार भरा उसमें !!
जब क्रोध में लाल हुआ प्रभु तो
लगता है अंगार भरा उसमें !
जब छन्द 'प्रकाश' पढ़े तो लगे
अनमोल विचार भरा उसमें !!

—प्र

18.

रे आ रहे हैं, बतिया रहे हैं
वहाँ राधा ने छीन लयी बँसुरी !
न राधा के रूप चढ़े, न बजे -
प्रभु फेर में हैं, कहती बँसुरी !!
री, राधा के रूप के आंगन में
हैं विभोर खड़े, बहकी बँसुरी !
मुस्का रही है छलका रही है
वह रूप 'प्रकाश' नयी बँसुरी !!

19.

हरि, राधा के रूप नहा रहे हैं
ठहरे रहिए, अभी आ रहे हैं !
कर जोरे खड़े हरि माँग रहे
बँसुरी हँस के, अभी आ रहे हैं !!
कहते हैं 'प्रकाश' उदास न हो
हरि राधा के संग में आ रहे हैं !
कभी हाँ कहती, कभी ना कहती
प्रभु तंग में हैं, अभी आ रहे हैं !!

20.

कहाँ जा रहे राम-लला बन के -
ठन के, हमको सुनते चलिए !
कुछ छन्द नये हैं लिखे हमने
अभिनन्दन में सुनते चलिए !!
सबरी पथ झाड़-बुहार रही
कुछ गा रही है सुनते चलिए !
हरि स्वागत में कुछ बेर लिए
है पुकार रही, सुनते चलिए !!

— प्रकाश

21.

कहने लगी 'रूप-कला' हँसके
पथ की हमको पहचान नहीं!
चलने दो हमें, बड़ी देर हुई
रखना मन में कवि म्लान नहीं!!
कहते हैं 'प्रकाश' झँपी पलकें
किस ओर गयी कछु ज्ञान नहीं!
उस रूप को छन्द में बाँध सके
किस भाँति हमें कछु ध्यान नहीं!!

22.

उस रूप के संग आकाश में थे
धरती पे गिरे पछता रहे हैं!
इस ओर चलो, उस ओर नहीं
किसी ओर की छोर न पा रहे हैं!!
कितने हैं झमेले 'प्रकाश' यहाँ
कुछ आ रहे हैं कुछ जा रहे हैं!
वह 'रूप-कला' कुछ दूर खड़ी
मुस्का रही है, हम गा रहे हैं!!

23.

कोई छन्द पढ़े न पढ़े हम तो
उस रूप के रंग में गा रहे हैं!
वह रूप अनूप उजागर है
सिगरे जग में बतला रहे हैं!!
पढ़िए - गुनिए मन में धरिए
अनमोल है रूप सजा रहे हैं!
हमरे मन में तो 'प्रकाश' बसा-
वह रूप, उसी में नहा रहे हैं!!

—प्रकाश

24.

हल्के - हल्के पग पाँव दबा
चुपके - चुपके वह आ रही है !
प्रभु आप की रूप-कथा महिमा-
गरिमा गुण-आगर गा रही है !!
हम सोये हुए थे हमें क्या पता
कब आ रही है कब जा रही है !
अनुभूति 'प्रकाश' की जाग उठी
ढिंग बैठ के छन्द लिखा रही है !!

25.

खत आया है खोल के देखियेगा
पढ़के हमको समझाइयेगा !
क्या लिखा खत में उसने, अपने
कर से, जरा रूप दिखाइयेगा !!
खत है कि 'प्रकाश' ये कागज है-
कोई कोरा, नहीं पढ़ पाइयेगा !
बिन नाम पता का लिफाफा कहाँ
किस भाँति जवाब पठाइयेगा !!

26.

वह छू दे तो छन्द अमन्द खिले
मुस्का दे तो गीत सुमेर छुवे !
हँस दे तो 'प्रकाश' नहीं भ्रम है
महुआ गदराये तो ढेर चुवे !!
कवि काव्य लिखे, महाकाव्य लिखे
पुरुवा - पछुवा के न फेर छुवे !
गर झूम के चूम ले भाल कहीं
मत पूछिए मोती मुंडेर चुवे !!

27.

कुछ बूँद चुवा के चली जो गयी
कब आये न आये तके रहिए !
जब रूप संभाल सके न, बवाल-
में, एक से एक खपे रहिए !!
वह रूप किसी का गुलाम नहीं
धरे हाथ पे हाथ पड़े रहिए !
उर खोल के प्यार 'प्रकाश' नहीं
जब दे सकते तो खड़े रहिए !!

28.

तिल को वह ताड़ बना सकता
किसी रूप में सामने आ सकता !
उस रूप का कोई जवाब नहीं
वो पहाड़ को धूल चटा सकता !!
उस रूप की कल्पना कोरी नहीं
अनहोनी को होनी बना सकता !
यदि हो न 'प्रकाश' कृपा उसकी
डग एक न आगे बढ़ा सकता !

29.

महिमा उस रूप की भूल गये
तुम फूल गये धन पाकर के !
अब जा रहे हो, पछता रहे हो
सब व्यर्थ में वक्त गँवा करके
अभिमान मिटा तब ज्ञान हुआ
कुछ हाथ लगा न कमा करके
उस रूप को पूज 'प्रकाश' रहा
अपना यह शीश झुका करके

30.

किस कोमल रूप में आये प्रभो !
किस जर्जर रूप में जा रहे हैं ?
हर भूल कबूल 'प्रकाश' हमें
कर देना क्षमा, अब जा रहे हैं !!
जितने प्रभु रूप थे ओढ़े हुए
सब रूप उतार के आ रहे हैं !
सच एक ही रूप तुम्हारा प्रभो !
लो सम्भालो हमें, हम आ रहे हैं !!

31.

वरदान है जीवन, ज्योति जले
प्रभु ! भीतर-बाहर ज्योति जले !
सुख में, दुख में, चलते-रुकते
पथ में प्रभु जीवन ज्योति जले !!
हर छन्द में बन्दन रूप का है
हर रूप में जीवन ज्योति जले !
जहाँ रूप 'प्रकाश' कला है वहीं
हर शब्द में जीवन ज्योति जले !!
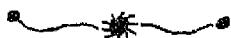
रूप हँसता खेलता गाता रहे,
सामने आता रहे जाता रहे !
आँख खोले तो उजाली रात हो,
मौन तोड़े तो निराली बात हो॥

—प्रकाश

" परिरम्भन "

गृह त्यागी बने या कि बागी बनें
तजि रूप का मोह विरागी बनें!
वसुधा पे' चलें कि उड़ें नभ में
ठहरें किस ठौर समाधी बने ?!

हमने तो 'प्रकाश' कहा — ठहरो!-
तुम रूप, चलें अनुरागी बनें!
धरती पर फूल खिले महके
बड़-भागी मनुष्य समाजी बने!!

" परिरम्भन "

" सर्ग- षष्ठ "

1.

कृष्ण की भाँति न प्रेमी हुआ
न तो भोगी हुआ न वियोगी हुआ !
न तो — राजा हुआ न तो नेता हुआ
न तो ज्ञानी हुआ न तो योगी हुआ !!
मनमीत 'प्रकाश' नहीं उनसे
विश्वासी कोई सहयोगी हुआ !
न तो गीता से ग्रन्थ महान कोई
बढ़के जग में उपयोगी हुआ !!

2.

तुलसी बिन राम कि राम बिना
तुलसी के विचार में डूब गये !
हमको कछु आदि न अंत पता
प्रभु के विस्तार में डूब गये !!
वरदायिनि माँ की कृपा कहिए
कविता की कतार में डूब गये !
किस भाँति 'प्रकाश' बयान करें
हम 'रूप' के प्यार में डूब गये !!

 —प्रकाश

3.

प्यार तुम्हें करते हैं यही–
अपराध हमारा, हमारे लिए है!
रूप तुम्हें जो दिया प्रभु ने
वह जीवन प्राण हमारे लिए है!!
संग तुम्हारे कटे जितने क्षण
स्वर्ग 'प्रकाश' हमारे लिए है!
रूप तुम्हारा तुम्हें क्या पता
यह चाँदनी चारु हमारे लिए है!!

4.

कामिनि! काम की बात करो
निष्काम न योग हमारे लिए है!
यौवन ज्वार न रोके रुके
बहने दो सुयोग हमारे लिए है!!
ईश्वर ने यह सृष्टि रची
कहना मत रोग हमारे लिए है!
प्राण प्रिये! सहयोग करो
यह पुण्य प्रयोग हमारे लिए है!!

5.

प्रीति सभी की सभी से नहीं
जुड़ती यह बन्धन भाव का है!
यह बन्धन भाव का है जो 'प्रकाश'-
तो प्रश्न नहीं अलगाव का है!!
प्रश्न नहीं अलगाव का है
जहाँ प्रेम समान स्वभाव का है!
जहाँ प्रेम समान स्वभाव का है
वहाँ निश्चित योग रचाव का है!!

–प्रकाश

6.

रूप अपूरब देखि हिया, हरषे –
अँखिया न अघाय निहारे !
कण्ठ लगावन को हुलसे, छतिया
यह लोभ न जाय संभारे !!
एक यही विनती तुमसों
मुखसों कहि जात न बात पियारे !
देखें तुम्हें तब लौं, जब लौं
ढक नैन 'प्रकाश' न जाय हमारे !!

7.

रूप सलोना संभारे नहीं –
संभरे, छलके हलके-हलके !
प्यास लिए अँखिया तरसे
बरसे दिन-रात, हिया दहके !!
सुधि भूलि 'प्रकाश' गयो तन की
पथ पाँव बढ़े बहके-बहके !
अनुराग के मानसरोवर में
उर हंस तिरे चहके-चहके !!

8.

प्रीति से पावन श्रेष्ठ नहीं
कोई बन्धन और सराहिए जी !
मिलते दृग दारुण कष्ट कटे
वह भाव प्रणम्य जगाइए जी !!
तुम धन्य 'प्रकाश' जो प्रीति जगी
उस रूप से रूप मिलाइये जी !
जिस प्रीति के रंग में कान्हा नचे
बन राधिका नाच नचाइए जी !!

—प्रकाश

9.

दुनिया ये विचित्र है पूज रही-
नित प्रेम बिना हरि पाहन को !
मुख से कहते हुए राम मिले
पर पूज रहा मन रावन को !!
यह प्रेम ही सार है सार बिना
सब व्यर्थ है अर्थ कमावन को !
कहता है 'प्रकाश' कि प्रेम बिना
प्रिय ! आग लगे सुख-सावन को !!

10.

प्रेम की पाती लिखी हमने
पढ़ ले - गुन ले चित में धर ले !
अधरों पै न बात खुले, चित में
प्रिय ! चाहे खुशी जितनी भर ले !!
हम तो हैं तुम्हारे, तुम्हारे लिए
नित गाते हैं गीत, नया स्वर ले !
तुम ही हो 'प्रकाश' की आस प्रिये !
दुविधा तज प्यार हमें कर ले !!

11.

नित रूप की चाँदनी- चारु बिछाये-
रहो, अँधियार मिटाये रहो !
मुझसे तुम दूर रहो मत यों
प्रिय ! प्रेम से पास बिठाये रहो !!
तुम ही रचना उस राम-ललाम की
मानस में नित छाये रहो !
प्रिय ! सो न सकूं न थकूं मग में
इस भाँति 'प्रकाश' जगाये रहो !!

—प्रकाश

12.

प्रिय प्रेम ही प्रेम बहे मन में
मन से अभिमान भगाये रहूँ !
तुम हो उस रूप की पुंज 'प्रकाश'
यही चित चाह बसाये रहूँ !!
भटके मन क्यों दुनिया भर में
तुमको ही गले से लगाये रहूँ !
मुझको तुम याद रहो इस भाँति-
कि, प्रीति की रीति निभाये रहूँ !!

13.

कहने लिए तन दो, पर है
मन एक, यही विश्वास जगे !
मनमीत 'प्रकाश' बसे उर में
हर अंग-सुअंग सुवास जगे !!
कोई और है ठौर नहीं जग में
मधुमास जहाँ हर मास जगे !
मुझे प्रेम मिला इतना तुमसे
जिसे पा उर पुण्य 'प्रकाश' जगे !!

14.

होली है प्रेम की, प्रेम बिना
मत खेलियो होली गँवारन सों !
बिन प्रेम में डूबे न रंग खिले
प्रिय के बिन व्यर्थ दिखावन सों !!
मन में तन में तुम ही तुम हो
समझो सब बात इसारन सों !
मनमीत 'प्रकाश' तुम्हारे बिना
हर रंग उमंग सधारन सों !!

—प्रकाश

नमीत मेरे तुम त्याग की मूरति -
हो, अनुराग के सागर हो !
म राम-रहीम सभी कुछ हो
तुम कृष्णा हो रूप कलाधर हो !!
कवि की तुम कल्पना कीर्ति सखे
तुम वेद-पुराण गुणागर हो !
तुम से ही 'प्रकाश' को पंथ मिला
हर गान के नाम उजागर हो !!

16.

तुम आदमी हो अखिलेश नहीं
तुम शेष-महेश - गणेश नहीं !
पर प्रेम- दया - अनुराग तुम्हीं
तुमसे बढ़के हैं दिनेश नहीं !!
तुम से ही मिली सुख-शांति मुझे
धनहीन हूँ किन्तु कलेस नहीं !
तुम गाओ 'प्रकाश' बजे मुरली
कहना कुछ और विशेष नहीं !!

17.

भगवान मेरा, मेरे सामने है
मुझे देखता है अनुरागता है !
मुझको दुख में वह जान सदा
दिन-रात मेरे संग जागता है !!
हँसता हुआ रोज मुझे मिलता
इस रूप में रंग सँवारता है !
कवि की कविता में 'प्रकाश' वही
रस-भाव सदृश्य विराजता है !!

—प्रकाश

18.

रस - रंग हजार सुघोलते हो
जब मीत मेरे तुम बोलते हो !
तुम्हें देखते ही मन नाच उठा
लगता मुरली लिए डोलते हो !!
मुस्कान तुम्हारी मुझे प्रिय है
उर गुप्त रहस्य टटोलते हो !
हँसते हो तो भाव-विभोर 'प्रकाश'-
हुआ, दर छन्द के खोलते हो !!

19.

किस नाम से 'रूप' पुकारूँ तुम्हें
अनमोल 'कला' प्रिय मेरे लिए।
मन में तो अमावस की रजनी
तुम चाँद बने हुए मेरे लिए !!
प्रिय! मान- ईमान सभी तुम हो
सुख - शान्ति सरोवर मेरे लिए
तुम रंग - गुलाल - अबीर लिये
यह होली 'प्रकाश' है मेरे लिए

20.

मनमीत हमारे लिए तुमसे, बढ़के
कोई प्राण पियारा नहीं !
यह जीवन नाव तुम्हारे बिना
प्रिय ! पा सकती है किनारा नहीं
मन में तुम ही हो 'प्रकाश' बसे
क्षण एक कदापि विसारा नहीं
यह नाम - प्रणाम - ललाम सखे
तुमसे सब है, इनकारा नहीं !

 —प्रका

21.

हमें जीवन मुक्ति की चाह नहीं
यह जन्म प्रिये! हर बार मिले!
हर बार मिले यह जीवन तो
हे प्रिये! तुम बारम्बार मिले!!
यह प्यार मिले व्यवहार मिले
तब जीत मिले या कि हार मिले!
गर हार मिले तो 'प्रकाश' यही
कवि-कण्ठ मिले उद्‌गार मिले!!

22.

यह दिव्य है रूप तुम्हारा प्रिये!
हम धन्य हुए तुम्हें पा करके!
तुमसे ही हमें अपनत्व मिला
घर आये हमारे कृपा करके!!
कवि की कविता तुमसे निखरी
कवि धन्य हुए रचना करके!
करता है 'प्रकाश' प्रणाम तुम्हें
अपना यह शीश झुका करके!!

23.

प्रिय! प्रेम का अर्थ है मौन रहो
यहाँ वाद-विवाद नहीं चलता!
यह रीति अलौकिक प्रेम की है
यहाँ पुण्य को पाप नहीं छलता!!
यहाँ जाति न धर्म का पाँव टिका
उर लोभ 'प्रकाश' नहीं पलता!
यह मंदिर दिव्य हुआ करता
इसमें घृत-दीप नहीं जलता!!

—प्रकाश

24.

इस सृष्टि में जो कुछ है जितना
सबमें भगवान सना हुआ है!
जिस भाँति प्रसून में गंध बसा
सबमें उसका बसना हुआ है!!
सब में यह मानव श्रेष्ठ 'प्रकाश'
जो ज्ञान प्रधान बना हुआ है!
फिर भी यह आदमी प्यार बिना
मत-भेद के बीच तना हुआ है!!

25.

प्यार वो सागर है जिसकी
लहरों में असीमित शक्ति भरी!
प्रिय! जाति की, धर्म की हो कितनी
मजबूत दीवार नहीं ठहरी!!
मनमीत 'प्रकाश' सनातन है-
यह प्रीति, सदा जग में लहरी!
यह बोई न सींची गयी लतिका
इसके खुद राम बने प्रहरी!!

26.

मनमीत तुम्हारे सिवा सर ये
किसी और के आगे नहीं झुकता!
मनुहार मिला जिस द्वार प्रिये!
तजि और के द्वार नहीं रुकता!!
हम प्रेम के हाथ बिके हुए हैं
बिन प्रेम 'प्रकाश' नहीं टिकता!
तुममें अभिमान-गुमान नहीं
कवि झूठ नहीं कुछ भी लिखता!!

—प्रकाश

27.

मनमीत तुम्हारी है आँख बड़ी-
यह भोली, भरा चित सावन सा!
हर भाव-स्वभाव-रचाव प्रिये!
सब सुन्दर, गात लुभावन-सा!!
जिस रोज नहीं मिलता तुमसे
लगता उस रोज भुलावन सा!
सच-झूठ 'प्रकाश' तुम्हीं समझो
मन-ही-मन गुंजित गायन-सा!!

28.

मनमीत तुम्हारी ही प्रेरणा से
कवि छन्द-प्रबन्ध रचा रहा है!
हर शब्द सुसंचित सागर में
मणि-दीप बना उतरा रहा है!!
हर वक्त प्रिये! विश्वास लिए
उर शब्द 'प्रकाश' सजा रहा है!
कोई और पढ़े न पढ़े, जिसके-
लिए है, पढ़ता वह जा रहा है!!

29.

प्रिय मीत! सदा गुण-ग्राहक ही
गुणवान का मान किया करता!
गुणहीन गँवार विचार विहीन
सदा अपमान किया करता!!
मनमीत 'प्रकाश' किसी को नहीं
कभी जाति से श्रेष्ठ कहा करता!!
गुणवान उदार जहाँ भी मिला
उसको कुलवान कहा करता!

—प्रकाश

30.

प्रियमीत ! हमारा-तुम्हारा कई -
जनमों का यहाँ संग-साथ रहा !
तुमको न भले उपयुक्त लगे
हमको तो यही विश्वास रहा !!
मनमीत 'प्रकाश' तुम्हीं वह हो
जिससे बिछुड़ा यह दास रहा !
हमें खोया हुआ वह राम मिला
पहले जिसका वनवास रहा !!

31.

मनमीत किसी के लिए यह जीवन
सिद्ध कहीं वरदान हुआ !
प्रिय ! और किसी के लिए यह-
जीवन, क्रोध में तीर कमान हुआ !!
प्रिय प्राण ! यही सुख का दुख का
जो रहस्य 'प्रकाश' प्रमान हुआ !
सुन ! कोई सभी के लिए न भला
जग में जनमा इनसान हुआ !!

32.

प्रिय मीत ! यही वह प्यार है जो
धनवानों के पास नहीं मिलता !
उनका उर रेगिस्तान है वो
जहाँ प्रेम-प्रसून नहीं खिलता !!
मनमीत ! 'प्रकाश' धनी जो बने
तो कदापि न रंक बने दिल का !
भगवान की याद करे दिल ये
जिनसे तिनका-तिनका हिलता !!

33.

मन की गहराइयों से गहरी
किसी सागर की गहराई नहीं!
पलकों में ढली परछाइयों की
तुलना में कोई परछाईं नहीं!!
नयनों ने जो बातें 'प्रकाश' कही
किसी शब्द में वो प्रभुताई नहीं!
फिर भी छवि जो उस रूप में है
किसी रूप में वो छवि पाई नहीं!!

34.

मनमीत! नहीं तुमसे बढ़के
कोई सुन्दर और जहान में है!
प्रिय वाणी तुम्हारी पीयूषमयी
मधु-संचित कोष परान में है!!
हमको तो 'प्रकाश' तुम्हारे सिवा
कोई और न नाम धियान में है!
सच है तुमको जब याद किया
तब ध्यान लगा भगवान में है!!

35.

खुद को तू बुलन्द करे इतना
दर तेरे खुदा, खुद आने लगे!
सब तीरथ-धाम जहां के तहाँ
सिर धुनि यहाँ पछताने लगें!!
मुस्का दो 'प्रकाश' तो क्या कहना
दुख-दर्द कटें हरषाने लगें!
सब धर्म के लोग भुला करके
मतभेद महा-सुख पाने लगें!!

—प्रकाश

36.

सबके प्रति प्रेम-दया उपजे
पनपे मन में दुर्भाव नहीं!
किस मोड़ पे कौन कहाँ किससे-
बिछुड़े, तो मिले यह गाँव नहीं!!
शुभ काम में नेह लगे, इससे
बढ़के कोई उत्तम भाव नहीं!
हर 'रूप' 'प्रकाश' महान बने
इनसान रचे अलगाव नहीं!!

37.

कुछ साथ चलेगा नहीं जगसे
यह तथ्य सभी हम जानते हैं!
क्षण-भंगुर जीवन है सबका
यह बात भी निश्चित मानते हैं!!
गुण-शक्ति मिली तो दयी की दया
हम क्यों न इसे पहचानते हैं?
बिन बात की बात 'प्रकाश' यहाँ
दिन-रात नया-रण ठानते हैं!!

38.

प्रियमीत मनुष्य के रूप में ही
भगवान का रूप जिया करता!
उस रूप से प्रेरित होकर ही
शुभ-कर्म मनुष्य किया करता!!
भगवान 'प्रकाश' की भावना में
वह पीर पराई पिया करता!
इनसान के रूप में ही बढ़के
गिरते को संभाल लिया करता!!

—प्रकाश

सर्ग- सप्तम्

" अवलम्बन "

माया महा ठगिनी है पिशाचिनि
लोग कहें, हम तो न कहेंगे !
माया रची जिसने उसका
अपमान करें, हम तो न करेंगे !!

माया-रूपी निज मातु-पिता से
मिली यह काया, उन्हें न तजेंगे !
देश- समाज की सेवा करेंगे
'प्रकाश' न माया से दूर बसेंगे !!

मौन फिर भगवान रह सकता नहीं
रूप का अपमान सह सकता नहीं !
द्रौपदी का चिर-हरन, सीता-हरन
कौरवों का नाश, रावन का मरन !!

"अवलम्बन"

सर्ग - सप्तम

1.

अवलम्बन प्रान का रूप में है
इस रूप का रंग सजाये रहो!
जिस ओर जहाँ पग मीत बढ़े,
पथ - कंटक - क्रूर हटाये रहो !!
रचना प्रभु की है 'प्रकाश' सुनो
हरि- रूप में रूप जमाये रहो !
कवि की बस कामना एक यही
हर रूप की लाज बचाये रहो !!

2.

इस सृष्टि में साधक हैं जितने
इस 'रूप' को — बाधक मान रहे!
जग छोड़ के भाग चले कितने
कितने भव-जाल बखान रहे !!
अपना मन साध 'प्रकाश' चलो
अपने पथ की पहचान रहे !
जब लौं यह साँस चलै तब लौं
हरि ही हर रूप में, ध्यान रहे !!

3.

हर जीव-जन्तु है समाज का अभिन्न अंग
भूख-प्यास किसको नहीं यहाँ सताती है?
क्या अमीर, क्या गरीब, छोटा या बड़ा यतीम
किसके दिलों को नहीं मौत ये कँपाती है!!

जाने-अनजाने जीव जितने जहान में हैं
सबको प्रकृति नित भोर में जगाती है।
आदमी जगे न जगे उसके लिए 'प्रकाश'
साधु-संत-ज्ञानी-कवि-कोविद बनाती है!!

4.

बाबूजी उदास क्यों हैं? लाये थे जहान में क्या?
खो गयी है वस्तु अनमोल कौन बोलिए?
जर या जमीन-जोरू तीनों के अलावा कोई
शत्रु और है तो, हो निशंक राज खोलिए

मस्त हो-के झूमिये 'प्रकाश' छोड़िये फितूर
कौड़ियों की ढेर में न शांति को टटोलिए
प्रभु के हवाले प्राण कीजिये, उन्हीं के नाम
साँस-साँस में पिरो-के, प्रेम-रस घोलिए।

5.

भाव में अभाव में जो रहता समान नित्य
वसुधा उतारती है आरती प्रभात है।
माता निज पुत्र को निहारती, बखानती है
पुत्र क्या है, प्रभु का अमोल वरदान है!!

देश का समाज का चुकाता ऋण है 'प्रकाश'
गिरते हुओं को जो संभाल ले, महान है।
धर्म, उपकार से बड़ा न कोई और मित्र
थामिये प्रभू का पाँव, कृपा के निधान हैं।

प्रका

6.

त्थर को तोड़ती गरीब मजदूरनी को
देख के 'निराला' तत्काल रुक जाते हैं!
पोंछती पसीना, बार-बार चोट मारती है
हाथ में हथौड़ा गुरु देख सकुचाते हैं!!
प्रगति की पीटते हैं थाली व्यर्थ ही 'प्रकाश'
लज्जा फुटपाथ पे पड़ी न देख पाते हैं!
कोमल हथेली के फफोले हथगोले जैसे
प्रगति के मुँह पे तमाचा मार जाते हैं!!

7.

एक अवलम्बन तुम्हारा है कृपा-निधान
कभी तो मिलेगा न्याय दीन को जहान में!
कभी तो थकेंगे हाथ अत्याचारियों के, राम!
मस्त घूमते 'प्रकाश' आपके धियान में!!

मौत की सताती याद जिसको, वही सदैव
माँगता है भीख निज प्राण की, अजान में!
अत्याचारियों के सामने वही झुकाता माथ
जानता नहीं जो प्राण देना स्वाभिमान में!!

8.

कुर्सियों की दौड़ में हमेशा चूक जाते बंधु!
'सत्य' औ अहिंसा की ये पागरी बचाने में!
लोकतंत्र की उदास झोपड़ी में खोपड़ी को
पीटने से क्या मिला 'प्रकाश' इस जमाने में

पैंतरा घुमाइये, कमाल कुछ दिखाइये
बताइये कि हम किसी से कम नहीं पयाने!
खींचिए शराब और सूँघिए गुलाब बंधु
चूकिए न डाकुओं से हाथ भी मिलाने मे

9.

लोग कहते 'प्रकाश' नाम तो कमायेगा
कमायेगा नहीं तो कैसे पेटभर पायेगा?
बोलो प्रभु! कैसे-कैसे पूछते सवाल लोग
भक्त को भला क्या भगवान ही सतायेगा?!
लोग जानते नहीं हैं दुनिया बनाने वाला
कब किसको कहाँ गिरायेगा-उठायेगा?
भक्त प्रह्लाद जैसे अटल भरोसे प्रभु
खंभ से निकल अविलम्ब तू बचायेगा!!

10.

तीन-चौथाई उम्र बीतने के बाद बंधु!
पूछते 'प्रकाश' से कि राह कौन आ गये?
बीच में बिचौलिए खड़े थे राह रोके प्रभु!
खींचतान में वहीं से रास्ता भुला गये!!
पीछे लौटना हमारे बूते की न बात आज
पूरी जिन्दगानी बट्टे-खाते में गँवा गये
जर्जर शरीर जोड़-जोड़ में समायी व्याधि
भार ढोते-ढोते थके पाँव थहरा गये!

11.

शार्ट-कट राह कोई हो तो बोलिए 'प्रकाश'
विनती हमारी ठुकरा-के मत जाइये!
मुक्ति की नहीं है चाह मन में हमारे आज
जिन्दगी घसीट सही राह पे तो लाइए!!
बची-खुची साँस जिन्दगानी की संभाल लीजे
काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह से बचाइए!
प्राण छूटने से पूर्व संभव जो हो सके तो
प्रभु निज रूप का स्वरूप दिखलाइये!!

—प्रकाश

12.

...ीम है मानव की योनि में जनम लेना
विद्या से भी युक्त नर होना न आसान है!
...ड़े- बड़े विद्या के विशारद मिलेंगे किन्तु
कवि होना, प्रभु का 'प्रकाश' बरदान है!!
...हाँ-तहाँ कवि भी अनेक हैं विराजमान
सबमें कवित्व शक्ति का नहीं प्रमान है!
अनायास दिल से जो छलकी सरस बानी
कविता वही है, वही कवि भी महान् है॥

13.

गीत गाने दीजिए लुटाने दीजिए 'प्रकाश'
होने दीजिए निहाल, भाव को जगाने में!
भाव के हैं भूखे भगवान रावरे 'प्रकाश'
दीनबन्धु देर न लगाते कभी आने में!!
कण- कण में बसे हैं राम रखवारे प्रिय!
तैरने लगी शिलाएँ सिंधु के तराने में!
उड़- उड़ बैठें हनुमान लंक में निशंक
लंका हो गयी उजाड़ चुटकी बजाने में!!

14.

हानि और ला. . बीच झूलते रहेंगे नित
भूलते रहेंगे राह ठाँव-ठाँव माया में!
काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह न तजेगा साथ
प्राण लागि लिपटे रहेंगे इस काया में!!
भाल पे लिखा है काल जानते हुए 'प्रकाश'
जोड़ते नहीं क्यों प्रीति राम रघुराया में!
आये हो तो आओ न लजाओ गीत गाओ-
मीत, जीवन मिलेगा तुम्हें बन्दों की छाया में!!

—प्रकाश

शिशु-रूप :—

15.

जगमा जिस रोज 'प्रकाश' यहाँ
यह जीव भयातुर रोने लगा !
घर में खुशियों का बधावा बजा
थक-के शिशु कोमल सोने लगा !!
दुविधा में पड़ा यह जीव-'कहाँ'
कहके अति आकुल होने लगा !
कहीं धूप लखे, कहीं छाँव लखे
भव-सिंधु में बिन्दु सँजोने लगा !!

16.

यह कौन है रूप के आँचल में
निज गोद ले मोद मना रही है ?
किलकार उठा, मन मुग्ध हुआ
सुख का सुविधान बना रही है !!
ममता की धनी यह देवी दयी
किस भावना से अपना रही है ?
शिशु को वह देख 'प्रकाश' सुखी
मन-ही-मन माँ सपना रही है !!

17.

दिनमान का रूप खिला नभ में
क्षण में वन-बाग सँवार गया !
दुख की रजनी रण हार गयी
क्षण में सुख पाँव पसार गया !!
शिशु सोच में डूब 'प्रकाश' गया
किस ओर कहाँ अँधियार गय
किस रूप की है महिमा इतनी
क्षण में रच रूप हजार गया

अव—— /92

प्रक

18.

शिशु शंकित सोच में है सिकुड़ा
झुकना - तनना किस रूप से है?
केस रूप का आदि न अंत कहीं
कहना - सुनना किस रूप से है?!
भटका मन खोज रहा किसको
उठना - गिरना किस रूप से है?
चलना - रुकना है 'प्रकाश' कहाँ
गति जीवन में किस रूप से है?!

19.

भय- शोक से आतुर अंतस है
शिशु का मन माँ बहला रही है!
निज आँचल मध्य छिपा मुखड़ा
दुखड़ा कर से सहला रही है!!
ममता उर आँगन में उमड़ी
तन - चंचल चारु हिला रही है!
वह दूध की धार चली क्षण में
मुख खोल 'प्रकाश' पिला रही है!!

20.

कब भूख लगे कब प्यास लगे
ममता अनुमान लगा रही है!
निज कण्ठ लगा-के मनस्विनि-सी
दुख को हर दूर भगा रही है!!
शिशु सो रहा है— कहीं शोर न हो
अंगुरी धर होंठ जता रही है!
मनमोहक रूप 'प्रकाश' लगे
घर आंगन-द्वार सजा रही है!!

के रंग हजार/93

—प्रकाश

ममता-रूप :-

21.

सहमी-सिमटी मुंइ पाँव धरे
कहीं नाहक नींद नहीं उचटे !
खनके न कहीं कंगना झटके
अंगुरी कहिं काश ! नहीं चटके !!
पहरे पर बैठ गयी ममता
कोई पास 'प्रकाश' नहीं फटके !
सब आँखिन-आँख सवाल सुने
सब उत्तर आँखिन से मटके !!

22.

शिशु मौन सचेत निहार रहा
घर-आंगन प्यार-अपार सजा !
हर रूप में रौनक लोच रहा
हर साज सिंगार बहार सजा !!
दुख का कहीं नाम-निशान नहीं
सुख-चैन का दीपक द्वार सजा !
शिशु प्रश्न 'प्रकाश' से पूछ रहा
किस भूपति का दरबार सजा ?!

23.

शिशु प्रश्न किया मन-ही-मन — माँ !
तुम कौन-सा स्वारथ साध रही
निज देह गला, घृत-दीप जला
किस साधना में रत जाग रही
दुत्कार 'प्रकाश' मिला जग से
फिर भी जग को अनुराग रही
निज-जीवन दाँव लगाकर क्यों
ममता की दुवा तुम मांग रही

— प्रका

24

रे रहिए ! शिशु फेर रहा कर कोमल जोर लगा न सका !
ममता थक-हार के सोई हुई झकझोर के मां को जगा न सका !!
फन नागिन तान-तरेर उठी सुकुमार 'प्रकाश' भगा न सका !
किलकार के थप्पड़ थाप दिया, उर का उद्गार दबा न सका !!

25.

ठहरे रहिए ! शिशु के मन की कवि बात उजागर तो करले !
प्रभु पालनहार तुम्हीं जग के, हल्का मन गाकर तो करलें !!
शिशु ने यह सोचा 'प्रकाश' प्रभो ! अहि गोद न सून कहीं करदे !
ममता थक-हार के सोई हुई शिशुहीन न नागिन ये कर दे !!

26.

जब आँख खुली ममता उछली, शिशु को झट गोद में चाँप चली !
अवरोध हजार हैं जीवन में, वह मृत्यु के बोध से काँप चली !!
दृग पोंछत अश्रु 'प्रकाश' दिखी, मुख आँचल में झट ढाँप चली !
शिशु ही बस मां का अलंब प्रभो ! कुछ बोल अनाप-सनाप चली !!

27.

हर रूप की चाहत भिन्न यहाँ, हर स्थिति भिन्न सहा करते !
सुख की सब चाह करें प्रभु से, दुख से भयभीत रहा करते !!
जब जन्म है सत्य 'प्रकाश' यहाँ, तब मृत्यु न झूठ कहा करते !
पथ नेक अनेक खुली धरती, चुन ले जो रुचे, क्यों डरा करते !!

28.

कुछ वर्ष व्यतीत हुए शिशु भी घर आंगन एक लगा करने !
घुटने-बल थाप हथेली चले मुह मा भर माटी लगा चखने !!
मनमानी 'प्रकाश' करे न डरे, बिन काम का काम लगा रचने !
कभी मां डपटे कभी प्यार करे, कभी रोने लगे तो कभी हँसने !!

29.

ममता शिशु पाल 'प्रकाश' रही दिल रोशन नाम करे जग में !
प्रभु ! बुद्धि-विवेक प्रदान करो शिशु भूले नहीं भटके जग में !!
सद्ग्रन्थ पढ़े, कुलवन्त बने, भय-रोग से मुक्त रहे जग में !
ममता की यही उर-चाहत है, सत्कर्म फले सुत का जग में !!

— प्रकाश

30-

जब पुत्र दुखी तो दुखी ममता
उसका अपना सुख ध्यान नहीं।
दिन-रात 'प्रकाश' जगे न थके
अपने तन का कछु ध्यान नहीं !!
कवि-कोविद-वेद-पुरान मते
ममता का नहीं उपमान कहीं!
कोई साधु न सन्त-व्रती ठहरा
तप त्याग में मां के समान कहीं !!

•

"अन्ततोगत्वा"

चलते-चलते थक पाँव गये
तन सूख गया मन हार गया!
सपनों को दीमक चाट गये
जब छीन सखे! अधिकार गया !!
नयनों की अलौकिक ज्योति गयी
चहुँ ओर पसर अँधियार गया!
चेहरे पर झुर्री झूल गयी
मस्ती को फालिस मार गया !!

— प्रकाश